योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

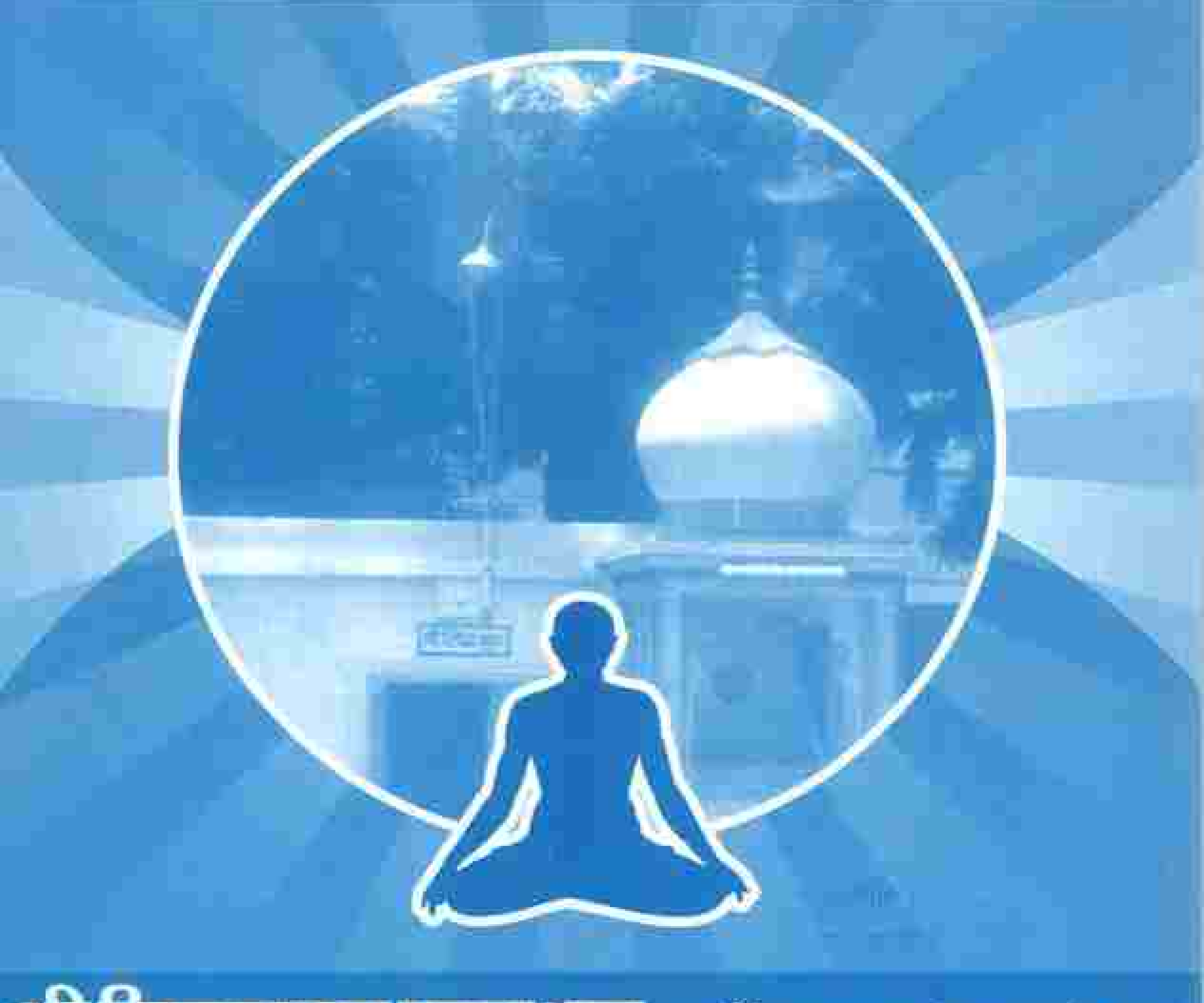

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 53 ; अंक : 10
जनवरी 2021

प्रकाशन तिथि : 01.01.2021

मूल्य - एक प्रति : 20/-, द्विवार्षिक : 360/-

अमृतकण

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।।

कर्मनिष्ठ एवं धीर विद्वान जिसके द्वारा यज्ञिय पदार्थों का ज्ञान करके यज्ञ में कर्मों का विस्तार करते हैं, जो इन्द्रियों का पूर्वज अथवा आत्मस्वरूप है, जो पूज्य है और समस्त प्रजा के हृदय में निवास करता है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्प से युक्त हो।

◆ ◆ ◆

न गुरोरधिकं तत्वं, न गुरोरधिकं तपः।
गुरूज्ञानात्परं तत्वं, तस्मै श्री गुरवे नमः।।

गुरु से बढ़कर कोई तत्व नहीं है। न गुरुदेव से बढ़कर कोई तप है। गुरु के ज्ञान से परमतत्व का ज्ञान होता है। उस गुरुवर को नमस्कार है।

◆ ◆ ◆

नादत्ते कश्चित् पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेक मुह्यन्ते अन्तवः।।

सर्वव्यापक परमात्मा न पाप ग्रहण करता है और न पुण्य। अतः जीवों का कर्मबन्धन केवल अज्ञानमात्र है जिसके कारण सभी जीव अपने को मोहमाया में फँसा मानते हैं।

◆ ◆ ◆

यथा सर्वगतं सौक्ष्मादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते।।

जिस प्रकार आकाश में लाखों घटनाएँ घटती हैं, लाखों विस्फोट होते हैं, किन्तु उनसे आकाश में न तो कोई विकार आता है और न कुछ घटता या बढ़ता है। अनेक तारागण, उपग्रह आदि प्रकट होते हैं, नष्ट भी हो जाते हैं किन्तु वह निर्विकारी ही रहता है। इसी प्रकार शरीर के अंग-प्रत्यंग में व्याप्त आत्मा भी मन,

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरुप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 53 जनवरी 2021 अंक : 10

श्री रामलाल जी प्रभवे नमः

यस्य प्रसादात् पतितास्सुपावनाः।
भवन्ति संसार सुताश्णाश्शिवाः।।
योगीश्वराणां परमेश्वरम् हरि।
श्री रामलालः प्रभुमीशमाश्रये।।

अर्थात् - जिनकी कृपा के एक कण को पाकर के अत्यन्त पतित भी परम पवित्र होकर संसार सागर से तारने की सामर्थ्य वाला हो जाता है, मैं उन परमेश्वरों के ईश्वर प्रभु श्री रामलाल जी को बार-बार नमस्कार करता हूँ।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) रामलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख- योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	11
3.	श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा- डॉ. विजय सिंह	14
4.	सोई जानई जेहि देहु जनाई- जगदीश राए बंसल	18
5.	2021-नववर्ष के अभिनन्दन में पद्यात्मिका-स्वरचनायें	21
6.	आश्रम-धर्म- अन्तू राम यादव	23
7.	अन्तर्मौन द्वारा योग-साधना- आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा	27
8.	भोजन के बाद वज्रासन लाभकारी है- दिनेशचन्द्र शर्मा	36
9.	योगी के लिए जरूरी है सात्विक आहार	38

●●●

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

विशेष लेख—

गुरुदेव क्या ?

(योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

संसार में जन्म लेने वाले सभी प्राणियों की मतियाँ भिन्न–भिन्न होती हैं और अपनी मति के अनुसार ही हर व्यक्ति उपासना के मार्ग में निकलता है। किन्तु फिर भी एक प्रश्न उपासक के सामने बना रहा करता है कि गुरुदेव क्या हैं और कितने शक्तिशाली हैं? साधारण रूप से इसका उपसंहार तो इसी के अन्दर हो जाता है।

मन्नाथस्त्रिजगन्नाथो मद्गुरुस्त्रिजगद्गुरुः।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्री गुरवे नमः।।

अर्थात्—साधक को चाहिये वह अपने इष्टदेव को सकल अंड–ब्रह्माण्डों का नायक समझे और अपने गुरुदेव को तीनों लोकों का गुरु समझे, प्राणी मात्र के अन्दर ओत–प्रोत रहने वाले दिव्य चेतना को अपना ही आत्मा माने। यह साधक की अपनी धारणा है।

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।

अर्थात्—परमात्मा का स्वरूप श्रद्धामय है। जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही वह बन जाता है। भारतवर्ष का श्रद्धामय–इतिहास यह प्रमाणित करता है कि श्रद्धावान पुरुषों ने अपनी श्रद्धा के बल से पत्थरों से ईश्वर को प्रकट कर लिया, धन्ना जाट आदि की कथायें भक्त चरित्रों के अन्दर बड़े उत्साह के साथ गाई जाती हैं। धन्ना जाट काश्त करने वाला साधारण व्यक्ति था, उसको केवल मात्र बहलावे के लियें किसी पंडित ने कह दिया कि तुम्हारे हाथ में जो टुकड़ा है इसके अन्दर श्री श्यामसुन्दर छिपे हुये हैं। उसके मन में पूर्ण परिपक्व निष्ठा बनी और उस पत्थर के टुकड़े में से जगदात्मा अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्रीकृष्ण को ढूँढ़ निकाला। यह श्रद्धा का ही उत्तमोत्तम परिणाम है। धन्ना के अतिरिक्त और भी अनन्त कथायें हैं। जिन्होंने श्रद्धा के आधार पर सब कुछ पा लिया है। इसलिये **''मन्नाथस्त्रिजगन्नाथो''** की धारणा करके साधक अपने इष्टदेव को सर्वथा पूज्य मान ही सकता है।

तात्विक बात

किन्तु तात्विक बात क्या है? इसके विषय में कुछ विचार कर लेना परम आवश्यक है। जिस समय हम रामायण को उठाकर अध्ययन करते हैं तो उस समय देखते हैं कि भगवान

शिव के आराध्यदेव श्री रामचन्द्र जी हैं। इसके लिये सबल प्रमाण है—सती का वह उपाख्यान जिसके कारण भगवान सदाशिव ने उनका परित्याग कर दिया था। उनका अपराध इतना ही था कि उन्होंने भगवान शिव की अर्धांगिनी होते हुए श्री रामचन्द्र जी के ईशत्व की परीक्षा के लिए कृत्रिम सीता का रूप बना लिया। भगवान शिव को यह स्वीकार न हुआ और उन्होंने सती का परित्याग इसलिये कर दिया क्योंकि उन्होंने उनके आराध्यदेव श्री राम की पत्नी सीता का रूप धारण किया था, जिसको वे मातृ भावना से देखते थे।

इस छोटी सी भूल का इतना बड़ा परिणाम भगवती सती को भोगना पड़ा कि जब तक उन्हें पार्वती रूप से भगवान शिव ने अंगीकार नहीं किया तब तक उन्हें घोर तप करना पड़ा और जब तक सती का शरीर रहा तब तक वे परित्यक्ता ही रहीं। अर्धांगिनी रूप से उनका मिलन फिर सती स्वरूप में न होकर दूसरा जन्म धारण करने पर पार्वती रूप से हुआ। पुराणों की इस कथा से यह आभासित होता है कि श्रीराम, भगवान शिव के आराध्यदेव हैं। उधर पद्मपुराणान्तर्गत दूसरा प्रकरण मिलता है। भगवान श्री राम को, जबकि सीता हरण हो गया, घोर दुःख हुआ व उन्होंने दण्डकारण्य में रहकर भगवान सदाशिव का सहस्त्र नाम जपते हुए व पर्णाहार करते हुए या केवल जल का ही आधार लेकर वर्षों तक घोर तप किया। परिणामस्वरूप भगवान सदाशिव प्रगट हुए। भगवान शिव के प्रगट होने का विषद् वर्णन शिव गीता में मिलता है। पहले एक बड़ा भारी महान शब्द सुनाई दिया। धीरे–धीरे प्रकाश हुआ और उस महान प्रकाश के अन्दर जगदम्बा पार्वती सहित भगवान सदाशिव विराजमान थे। भगवान सदाशिव ने प्रगट होकर श्रीराम को पाशुपत अस्त्र प्रदान किया और उनको आश्वासन देते हुए कहा—

इदं पाशुपतं दिव्यं प्रगृहाण रघूद्भव।
एतदासाद्य पौलस्त्यं जहि मा शोकमर्हसि।।

हे राम! तुम यह पाशुपत अस्त्र ग्रहण करो इसको लेकर तुम रावण को मारो तुम चिन्ता के लायक नहीं हो। परिणामस्वरूप भगवान शिव से वरदान प्राप्त कर श्री राम ने लंका पर चढ़ाई की और घोर युद्ध के साथ रावण को पराजित करके व उसके मृत हो जाने के बाद उसके भाई विभीषण को राज्य सौंपकर सीता को वापस ले आये। जिस समय श्री राम ने लंका पर चढ़ाई की और सेतुबन्ध करना आरम्भ किया उससे पहले उन्होंने अपने आराध्यदेव भगवान सदाशिव की प्रतिष्ठा समुद्र किनारे की एवं भगवान शिव की आराधना करके उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर लंका पर चढ़ाई की और संग्राम में विजय प्राप्त की। लंका के संग्राम के बाद जिस समय श्रीराम पुष्पक विमान से लौट रहे थे उस समय अपनी सहधर्मिणी सीता को अपने बनवास में रहने के स्थानों को दिखलाया। उसमें विशेष रूप से

भगवान शिव की जहाँ आराधना की गयी थी उस स्थान को दिखलाते हुए श्रीराम ने कहा–"**अत्र पूर्व महादेवः प्रसाद मकरोद्विभुः।**"

अर्थात् हे सीता यह वह स्थान है जहाँ पर भगवान महादेव जी ने मुझ पर कृपा की थी। इस प्रकरण के पढ़ने से यह पूरी तरह आभासित होता है कि भगवान सदाशिव श्रीराम के आराध्य देव हैं। इसी प्रकार जब हम श्रीकृष्ण चरित्र का अध्ययन करते हैं तो उनके गोकुल में बाललीला के समय में भगवान शिव दर्शनार्थ आते हैं और उन्हें अपने इष्टदेव बतला करके यशोदा जी से प्रार्थना करके उनके दर्शन करते हैं। द्वारिका वास के समय में रुक्मिणी से पुत्रोत्पत्ति के निमित्त उपमन्यु ऋषि से दीक्षा ग्रहण करके भगवान श्रीकृष्ण ने बारह साल तक घोर तप किया। परिणामस्वरूप उनके घर में रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न का जन्म हुआ। इसके साथ–साथ भगवान श्रीकृष्ण द्वारा नित्य नियम से भगवान शिव का पार्थिव पूजन का वर्णन पुराणों में मिलता है। एक बार माध्यान्हिक नित्यकर्म में भगवान श्रीकृष्ण लगे हुए थे। उसी समय मार्कण्डेय आदि मुनि भगवान श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ आये। उस समय भगवान श्रीकृष्ण शिव का पूजन कर रहे थे। मार्कण्डेय आदि मुनियों ने श्रीकृष्ण की शिव उपासना को देखकर बड़े आश्चर्य के साथ श्रीकृष्ण से ही यह प्रश्न किया–

त्वं विष्णुः कमलाकान्तः परमात्मा जगद्गुरूः।
तव पूज्यः कथं शम्भूरेतत् सर्व वदास्मान्।।

अर्थात्–हे श्रीकृष्ण तुम स्वयं परमात्मा जगदगुरू विष्णु हो तुम्हारे पूज्य भगवान शिव किस प्रकार है? यह बात हमारी समझ में नहीं आयी। इसलिये हमें स्पष्ट खोलकर समझाओ कि भगवान सदाशिव तुम्हारे आराध्यदेव किस प्रकार हैं? भगवान श्रीकृष्ण ने इसका उत्तर दिया–हे मुनि मार्कण्डेय! यद्यपि तुम तात्विक बात को जानते हो फिर भी तुमने लोकहित के विचार से जो प्रश्न किया है उसका उत्तर तुम्हे समझाकर बतलाता हूँ। जिस परमानन्द ज्योति की मैं आराधना करता हूँ उसका वर्णन सावधान होकर सुनो।

ज्योतिर्यत् परमानंदं सावधानमतिः श्रृणु।
वामांगादभवत्तस्य सोहंविष्णुरिति स्मृतः।।
जनयामास धातारम दक्षिणांगात्सदाशिवः।
मध्यतो रूद्रमीशानं कालात्मा परमेश्वरः।।
तपस्तपन्तु भावत्सा इति तानब्रवीच्छिवः।

अर्थात्–जिस परमानन्द ज्योति की मैं आराधना करता हूँ वह भगवान महादेव जी हैं। मैं उनके वाम भाग से पैदा हुआ इसलिये विष्णु नाम से विख्यात हूँ। उन्होंने अपने दक्षिण भाग से ब्रह्मा जी को पैदा किया और मध्य से रुद्र जी को पैदा किया और हम सब की उत्पत्ति

हो जाने के बाद भगवान महादेव जी ने आज्ञा दी कि हे पुत्रो तुम तप करो। इस से यह मालूम पड़ता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों के मूल कारण कोई और ही है और वह सत्ता उनसे आगे की है।

श्री देवी भागवत आदि पुराणों के अन्दर कुछ और ही प्रकार की कथायें मिलती हैं। एक बार ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों देव घूमते हुए किसी दिव्य लोक में जा निकले, वह लोक बड़ा दिव्य था, जिसको ये लोग पहले जानते ही नहीं थे। जब इस लोक में ये आगे बढ़ते ही चले गये तो एक दिव्य मन्दिर के अन्दर दिव्य सिंहासन पर विराजमान अष्टभुजी महामाया भगवती दुर्गा को देखा। ज्यों ही इन सबने भगवती का दर्शन प्राप्त किया तो ये सब युवक स्त्रियाँ बन गये। जब अपने आप की यह स्थिति देखी तो स्वयं विष्णुभगवान ने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक देवी की स्तुति की। इन सबने हाथ जोड़कर कहा–

"हे माता! हमने यहाँ आकर के यह जान लिया कि सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय तुम से ही होती है। हमने इस लोक में आ करके हरि और ही देखे। इसी प्रकार शिव और ब्रह्मा और ही थे। इससे यह ज्ञात होता है कि और भुवनों में भी ब्रह्मा, विष्णु, शिव और ही होंगे। हे माता! हम तेरे महान प्रभावों को नहीं जान सके।" इस प्रकरण से यह ज्ञात होता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव से भी परे और तत्त्व है, जिस तत्त्व की ये स्वयं आराधना करते हैं। श्री महाभारत में युद्ध के उपरान्त गीता के प्रकरण में अर्जुन ने भगवान श्री कृष्ण से प्रार्थना की कि हे प्रभो! आपने युद्ध के समय जो गीता सुनाई थी वह अब मुझे पूरी–पूरी तरह याद नहीं है इसलिये कृपा करके मुझे गीता का उपदेश दुबारा कर दीजिये। अर्जुन की ऐसी प्रार्थना सुनकर श्री कृष्ण ने उत्तर दिया कि अर्जुन! तुमने यह बड़ी भारी भूल की कि उस परमोपदेश को भुला दिया।

न शक्यस्तन्मया भूयः तथा वक्तुंह्यशेषतः।
परंहि ब्रह्म कथितं योग युक्तेन तन्मया।।

अर्जुन तुमने उस उपदेश को भुला दिया यह बहुत भारी गलती की। वह उपदेश मैंने योग युक्त होकर दिया था। इसलिये वह स्वयं परब्रह्म का ही उपदेश था। अतः वह पवित्र ज्ञान जैसा का तैसा अब मुझसे भी नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकरण को पढ़ करके भी कृष्ण का योग युक्त होकर उपदेश देना स्थिति का तारतम्य बतलाता है। इन सभी प्रकरणों से यह प्रगट होता है कि श्रीराम के रूप में श्रीशिव ने व कभी शिव के रूप में श्रीराम ने किसी और ही तत्त्व की उपासना की थी, जो परात्पर है और सर्वतोबन्द्य है, सभी ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता उसी परब्रह्म के प्रतीक मात्र हैं और वह सत्ता उनसे भी परे है, हमारे शास्त्रों में व पुराने इतिहास में श्रीगुरुदेव की बहुत बड़ी

महिमा लिखी है और उसका अन्तिम निष्कर्ष यह दिखलाया है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव सभी देव उस तत्त्व की आराधना से ही ब्रह्मा–विष्णु–शिव हैं। अन्यथा सर्वसाधारण मनुष्यों जैसे मनुष्य ही हैं।

गुरुप्रसाद

गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मा–विष्णु–महेश्वराः।
सामर्थ्य तत्प्रसादेन केवलं गुरुसेवया।।

ये सभी प्रकरण यह प्रगट करते हैं कि यह कोई अव्यक्त सत्ता है। जो सभी देवों को प्रकाश देने वाली है और इसकी आराधना से ही मनुष्य परम श्रेय को प्राप्त हो सकता है। उपनिषदों में विशेषतः ब्रह्म विद्योपनिषद में सीधे शब्दों में स्पष्ट कहा गया है–

वेदशास्त्राणि चान्यानि पदपांसुमिव त्यजेत्।।
गुरुभक्तिः सदा कुर्याच्छ्रेयसे भूयसे नरः।।
गुरुदेव हरिः साक्षान्नान्यां इत्यब्रवीच्छ्रुतिः।।

अर्थात्–वेदशास्त्र पुराणादि से विहित कर्म, जो कर्म उपासना आदि का विषय है उस सबको छोड़कर परम श्रेय लाभ करने के लिये मनुष्य को गुरुभक्ति करनी चाहिये। गुरुदेव का स्वरूप क्या है और उनकी शक्ति क्या है यह आगे की पंक्तियों में हम वर्णन करने का प्रयत्न कर रहे हैं। अधिकांश लोगों में इस बात का प्रचार है कि जहाँ पर गुरु भक्ति की चर्चायें चला करती हैं वहाँ से मनुष्य अपना नाक मुँह सिकोड़ कर पीछे हट जाया करते हैं और कहा करते हैं कि यह गुरुडम है, ढकोसला है, एक आदमी का प्रपंच है जो कुछ भोले–भाले व्यक्तियों को बहका करके अपने पीछे लगा लेता है और अपनी पूजा ईश्वर की तरह कराया करता है। ऐसा नहीं होना चाहिए, किन्तु यह बात यथार्थ नहीं है। यह उन लोगों की भावना है जो सद्‌गुरु तत्व को बिलकुल नहीं जानते और उससे बिल्कुल परे हैं। श्वेताश्वर उपनिषद का लेख है।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथादेवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

अर्थात्–मनुष्य की जैसी अपने इष्ट देव में श्रद्धा हो वैसी ही गुरुदेव में भी होनी चाहिए तभी उसको गुप्त रहस्यों का बोध हुआ करता है। वैसे श्रद्धा के मार्ग में साधारण तो नियम यही है कि उपदेष्टा गुरु के प्रति मनुष्य को ईश्वरीय बुद्धि रखनी ही चाहिये और उसकी आज्ञाओं का पालन करना चाहिये। शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार गुरुदेव का क्या स्वरूप है? उसको कुछ प्रमाण सहित हम समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं। योग–दर्शन में भगवान पतंजलि देव ने गुरु का व्याख्यान करते हुए सूत्र की रचना की।

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए भगवान व्यासदेव जी ने ये पंक्तियाँ लिखी हैं–

पूर्वे हि गुरवः कालेनानवच्छिद्यन्ते,
यत्रावच्छेदनार्थेन कालो नोपावर्त्तते,
स एष पूर्वेषामपि गुरुः। यथादस्य,
सर्गस्यादौ प्रकर्षगत्या सिद्धस्तथाऽति,
क्रान्ति सर्गादिष्वपिप्रत्येतव्यः।

इसका अर्थ यह है कि वह नित्य शुद्धचित्त परमात्मा सृष्टि के शुरूआत से अब तक होने वाले गुरुओं का भी गुरु है वह अनादि सिद्ध है। उसकी ही एक सत्ता इस प्रकार की है जो काल की सीमा से आगे है, इसी सूत्र के भाष्य में–

भास्वती टीका मे–

पूर्वे गुरवो हिरण्यगर्भादयः कालेनाच्छिद्यन्ते।

अर्थात्–जिनकी सत्ता काल की सीमा के अन्तर्गत है वह अधिकृत सीमा है। सद्‌गुरु तत्व उससे भी आगे की वस्तु है। जिसकी कोई अवधि नहीं है, जिसका कोई अन्त नहीं है। वह है अनादि और अनन्त। शुद्ध चेतन है। वही सत्ता ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के अन्दर भी अपना प्रकाश रखती है। परमात्मा की सृष्टि में अनेक ब्रह्माण्ड हैं और उन अनेक ब्रह्माण्डों के अनेक ब्रह्मा, विष्णु, शिव हैं।

तत्र–तत्र चतुर्वक्ता ब्राह्मणो हरयो भवाः
असंख्याताश्च रुद्राद्या, असंख्याता पितामहाः।
हरयश्चाप्य संख्याता, एक एव महेश्वरः।।

अर्थात्–अनन्त ब्रह्माण्डों के अन्दर असंख्य ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव हैं और वह सद्‌गुरु तत्व नित्य मुक्त परात्पर निर्गुण ब्रह्म ही है, उसमें से ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव का प्राकट्य है। एक महेश्वर के अन्दर ही ईश आदि सब देवता दिखलाई देते हैं।

ईशाद्या सकला देवाः दृश्यन्ते परमात्मानि।

अर्थात्–ईश आदि सभी देवता उस परमात्मा में इस प्रकार प्रकट होते हैं जिस प्रकार जल के अन्दर जल की लहरें पैदा होती हैं या सोने से सोने के जेवरात पैदा हो जाते हैं, अतः निर्णयात्मक सिद्धान्त की बात यह है–

यत्रावच्छेदनार्थे कालो नोपावर्तते स गुरुः।

अर्थात्–जिसका अन्त करने के लिये काल उपस्थित नहीं होता या दूसरे शब्दों में जो सत्ता काल के अधिकार से आगे है जिसका न कोई आदि है और न अन्त है, वही सत्ता

सद्गुरु तत्व है जिसके विषय में हमारे शास्त्र कहते हैं–

भयादस्य अग्निस्तपति, भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च, मृत्युः धावति पंचमः।
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकौ नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्व तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।

अर्थात्–वही एक सत्ता इस प्रकार की है जिसके भय से अग्नि तपती है, सूर्य तपता है, वायु और इन्द्र दौड़े–दौड़े फिरते हैं और काल हर समय आज्ञा में रहता है। वह स्वयं प्रकाशशील है, वहाँ न सूर्य चमकता है, न चन्द्रमा चमकता है, न बिजली का प्रकाश है अग्नि का तो कहना ही क्या?

उसी के कारण यह सब विश्व प्रकाशित हो रहा है वही सत्ता परात्पर नित्य एवं नित्य पूज्य है। जिस शरीर को वह तत्व अपना अधिष्ठान स्वीकार करता है वह शरीर उसके तेज से प्रकाशित हो उठता है। नाम रूप से वन्दना उस शरीर की ही जाती है, जिसके अन्दर यह तत्व प्रकाशित होता है। कठोपनिषद का वचन है–

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमैवेष वृणुते तेन लभ्यस्त–स्यैष आत्मा विवृणुते तनुंस्वाम्।।

अर्थात्–यह आत्मा बहुत प्रवचन–बाजी से बुद्धिमानी से और केवल शास्त्र श्रवण से ही प्राप्त नहीं होता, प्रत्युत जिसका वह स्वयं वरण करता है उसको मिलता है। और जिसे यह मिल जाता है उसके शरीर को यह अपना बना लेता है। इस मंत्र का सीधा सा अर्थ यही हुआ है।

जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई।

अर्थात्–उस परमात्मा को पाकर उसमें विलीन होकर मनुष्य उसका ही रूप बन जाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार ही नित्य चेतन–घन सच्चिदानन्द प्रभु जिसके शरीर को अपना अधिष्ठान बनाते हैं उसमें वे स्वयं ही होते हैं। अतः तात्विक बात तो यही है कि जिसके शरीर में आदि अन्त रहित उस निर्गुण सत्ता का प्रकाश हो जाता है वही गुरु पद वाच्य है। वैसे योग सिद्धान्त के अनुसार जो योगी कृतकृत्य हो चुका है जिसकी परम लक्ष्य तक पहुँचाने वाली निर्वाण की वृत्ति ही शेष है, और वह भी वृत्ति हर समय अस्मि, अस्मि, अस्मि का ही जाप किया करती है। इसको निर्वाणोन्मुखी वृत्ति कहते हैं। जो योगी ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा हो करके कूट स्थिति में पहुँच गया है और जिसकी केवल यह निर्वाणोन्मुखी वृत्ति शेष है जो अपने आपको सर्व भूतस्थ देखता है और सर्व भूतों को अपने अन्दर देखता है उसकी दृष्टि

में द्वैत खत्म हो गया है। भेदभाव की शृंखला टूट चुकी है।

जगदात्मा श्रीकृष्ण के कथानुसार—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।

इस प्रकार का व्यक्ति भी योग युक्त होने से गुरु पद वाच्य है। जिसके हृदय को अपना बना करके यह सत्ता प्रकाशित हो उठती है वही गुरू है। वही शक्तिपात कर सकता है और सिद्धियों का दाता है। इसलिये हमारे मन के अन्दर जो गुरू शब्द की अवहेलना रही है उसका कारण केवल एक ही होता है कि हम गुरू की सही परिभाषा नहीं जानते। पुराणों में गुरू की परिभाषा निम्नलिखित श्लोकों में वर्णित है—

गु शब्द स्त्वन्धकारोऽस्ति, रू शब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकार निरोधित्वाद, गुरुरित्यभिधीयते।।

अर्थात्—'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार और 'रू' शब्द का अर्थ है अन्धकार को नष्ट करने वाला। अन्धकार के वेग को रोक करके प्रकाश देने वाली शक्ति का नाम गुरू है और वह स्वयं प्रणव स्वरूप है। इसलिये साधक के लिये पुराणों में हमारे पूर्वाचार्यों ने आदेश दिया—

यावत्कल्पांतको देह–स्तावद्देवि गुरं स्मरेत्।
गुरूलोपो न कर्तव्यः स्वछन्दो यदि भावयेत्।।

अर्थात्—कल्पनर रहने वाला शरीर भी प्राप्त हो जाय और कितनी ही ऊँची सामर्थ्य वाला हो जाये तो भी गुरुदेव का स्मरण करते रहना चाहिये। आजादी चाहने वाले व्यक्तियों को गुरु की उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिये। तभी मनुष्य परम श्रेय का भागी हो सकता है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः।
भुंजते ते त्वघं पाप ये पचन्त्यात्मकारणात्।।

यज्ञावशेष अर्थात् सब को सबका हिस्सा देकर बचे हुए अन्न को खाने वाले सब पापों से मुक्त हो जाते हैं, पर जो पापी लोग केवल अपने लिए ही पकाते हैं—कमाते हैं, वे पाप खाते हैं।

सम्पादकीय—

।। श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

नववर्ष मंगलमय व सुखमय हो !

—योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

ईसवीय वर्ष 2020 का अवसान हो गया है, नया वर्ष 2021 प्रारम्भ हो गया है। पिछला वर्ष सारी दुनिया के लिये अत्यन्त भयावह और कष्टप्रद रहा है इसे सभी जानते हैं। कोरोना महामारी ने लाखों लोगों को कालकवलित कर लिया है। मनुष्य के जीवन की धारा छिन्न–भिन्न हो गई। जीवन सभी का प्रभावित हुआ है। असामान्य जीवन बन गया है मनुष्य का। सपनों पर पानी फिर गया। अंग्रेजी की कहावत–Man proposes God disposes चरितार्थ हो गयी। अभी तक महामारी का हाहाकार सुनाई दे रहा है। अब सुनने में आया है कि इसका vaccine टीका खोज लिया गया है। मनुष्य को बचने की आशा की किरण दिखाई देने लगी है।

मानव देह क्षण भंगुर है इसे तो नियमतः सभी को त्यागना ही पड़ता है। वस्तुतः जीवन और मृत्यु भगवान् के हाथ में है। श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् कहते हैं–'**अमृतं चैव मृत्युश्च सद्सदचाहमर्जुन**'।

जीवों का अमृतत्व और मृत्यु दोनों मैं ही हूँ। इस विषय में उपनिषद् कहते हैं–

'**मृत्योर्मामृतं गमय**' हे मनुष्य तुम मृत्यु की ओर नहीं अमृतत्व की ओर चलो। अमृतत्व को प्राप्त करने के लिये मनुष्य को प्राण की उपासना करनी होती है। प्राण साधना अध्यात्म की रीढ़ है। सांस तो हर प्राणी लेता है किन्तु मन को भावना को जोड़कर इसमें चेतना का संचार करने पर यही साधना बन जाती है और साधक शनैः शनैः अमृतत्व की ओर बढ़ जाता है। यह योग मार्ग का विषय है, साधना का विषय है। गीता में भगवान् कहते हैं हे अर्जुन! अमृत और मृत्यु मैं ही हूँ।

जो प्राण साधना के रहस्य को समझ कर इसकी साधना करता है वह अमरत्व को प्राप्त होता है। मनुष्य साधना से विमुख रहता है उसे आत्मज्ञान की पिपासा ही नहीं होती है वह

दुनिया से आत्मज्ञान के बिना ही विदा हो जाता है। मेरे गुरुदेव भगवान् अपने योग प्रचार के कार्यक्रमों में योगी भर्तृहरि जी का एक श्लोक प्रायः ही उद्‌बोधन में कहा करते थे वह निम्न है–

''आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितम्
व्यापारैर्बहु कार्यभार गुरुभिर्कालो न विज्ञायते
ज्ञात्वा जन्मजरा विपत्ति मरणं, त्रासश्च नोत्पद्यते
पीत्वा मोहमयीं प्रमाद मदिरां उन्मत्तभूतं जगत्।

इसका तात्पर्य है कि प्रतिदिन सूर्य उदय होता है और शाम को अस्त हो जाता है। इस प्रकार से हमारी आयु का एक-एक दिन घट रहा है। हम लोग अपने काम धन्धों में इतने व्यस्त हो जाते हैं कि समय का पता ही नहीं चलता। रोज हम लोगों को यम-सदन की ओर जाते देख रहे हैं किन्तु हमें मृत्यु का कोई भय नहीं हो रहा है।

मनुष्य मोह एवं प्रमादरूपी मदिरा को पीकर उन्मत्त (पागल) हो रहा है। इस प्रकार से हमारे गुरुदेव जी हर प्रवचन में अपने बच्चों को चेतावनी दिया करते थे। अस्तु

यह संसार दुखों का घर कहा गया है–गीता में श्री भगवान् कहते हैं–

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमाम्गताः।

गीता–8/15

अर्थात् यह संसार दुःखों का घर है और नश्वर भी है। जो योगी मुझे प्राप्त कर लेता है वह नश्वर संसार को सदा के लिये छोड़कर मुझे प्राप्त कर लेता है और उसे मुक्ति रूपी परम सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

गीता–8/15

अज्ञानी दुःख को ही सुख मान बैठता है। दुःख उठाते-उठाते उस दुःख को ही सुख मानकर शाश्वत सुख को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करता किन्तु जो सात्विक पुरुष है। विवेक सम्पन्न है वह दुःख को हेय (त्याज्य) मानकर इसके परिहार का उपाय ढूँढ लेता है। दुःख के सदा के लिये निवारण का उपाय विवेकख्याति है. पतञ्जलि भगवान् कहते हैं–

'विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः''

योग सू 2/26

अर्थात् अविद्या से पूर्ण रहित जो विवेकख्याति है वही दुःख के पूर्ण निवारण का उपाय है। इस कारण से भगवान् पतञ्जलि जी कहते हैं कि आगे कल को आने वाला जो दुःख

है वह त्याज्य है दूर करने योग्य है। सूत्र दिया है–

''हेयम् दु:खमनागतम्'' *(यो. सू. 2/16)*

अनागत (भविष्य में आने वाला) जो दु:ख है उसका निवारण किया जाना चाहिये। उसको हटा देना चाहिये। विवेकी पुरुष के लिये संसार दु:खरूप ही है अत: कहा है–

''सर्वमेव दु:खम् विवेकिन:'' *(यो. सू.)*

विवेकी के लिये दु:ख ही दु:ख है सुख तो केवल स्वरूपस्थिति अर्थात् मुक्ति में ही है। इसलिये योगी को निरन्तर विवेकख्याति की प्राप्ति का प्रयत्न करते ही रहना चाहिये।

जिस प्रकार से **रूई का कण** आँख में गिर जाने पर व्यक्ति छटपटा जाता है इसी प्रकार से विवेकी व्यक्ति भी दु:ख के तुरन्त निवारण का उपाय कर लेता है।

अत: आवश्यकता है साधना में विश्वास तथा शुद्ध भावना की। आस्तिक व्यक्ति विश्वास करता है परमात्मा के अस्तित्व में महापुरुषों के वाक्यों में तथा शास्त्र प्रमाण में। गुरू एवं शास्त्र की आज्ञा–परमात्म प्राप्ति की है उसका प्रयास करना ही चाहिये।

भावना ही धारणा का रूप है और यह धारणा समाधि की आधार भित्ति होती है। अत: साधक को चाहिये साधना के प्रति श्रद्धापूर्ण होकर साधना में लगा रहे। अश्रद्धा से किया गया तप व साधना से कोई फल न तो इस लोक में मिलता है न परलोक में। श्रद्धा विश्वास के विषय में संत तुलसीदास लिखते हैं

''भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा:–स्वान्तस्थमीश्वरम्।''

मैं देवी पार्वती एवं भगवान् शिव को प्रणाम करता हूँ। जो श्रद्धा एवं विश्वास के प्रतीक हैं। इनकी कृपा के बिना सिद्ध गण भी अपने अन्त:करण के ईश्वर को देख नहीं सकते।

आइये! नव वर्ष की इस पावन बेला में श्रद्धायुक्त होकर लौकिक जीवन जीते हुये आत्मोत्थान के लिये कर्म करते रहें। आशा करें हम आगे सुनहरे भविष्य की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

मैं अपने सभी सिद्धयोग के साधकों, पाठकों के उज्जवल जीवन की कामना करता हूँ। हमारे जीवन में आरोग्यता, सुख–समृद्धि, ध्यान में उन्नति और प्रसन्नता बनी रहे। इसी मंगल कामना के साथ।

जय सद्गुरुदेव जी की!

श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा

—डॉ. विजय सिंह

इक्ष्वाक वंश में एक महादानी राजा नृग हुये हैं। वे नित्य लाखों दुधारू गायों को स्वर्ण मंडित कर ब्राह्मणों को दान दिया करते थे। एक दिन एक अपरिग्रही तपस्वी ब्राह्मण की एक गाय राजा नृग के दान देने हेतु एकत्रित गायों में मिल गयी। राजा ने उसे दान किसी अन्य ब्राह्मण को कर दिया। बाद में जिस ब्राह्मण की वह गाय थी उसने अपने गाय की पहचान कर दान लेने वाले ब्राह्मण से कहा यह मेरी गाय है। दूसरा ब्राह्मण ने कहा—यह! अभी मैं राजा नृग से दान में प्राप्त किया हूँ। विवाद के निपटारे के लिये वे दोनों राजा नृग के पास गये। राजा ने अपनी गलती स्वीकारते हुये दोनों से हजारों गाय ले लेने का आग्रह किया परन्तु वे नहीं माने और उस दान दिये एक गाय को दोनों ने त्याग कर घर लौट गए।

कालान्तर में राजा नृग का जब देहावसान हुआ। उन्हें यमराज ने कहा—राजन्! आप पहले अपने पापों का फल भोगना चाहते हैं या अनन्त पुण्यों का फल भोगना चाहते हैं। राजा नृग ने कहा—मैं अपने पापों के फल को पहले भोगना चाहूँगा। उसी क्षण यमराज ने कहा—गिर जाओ। राजा यमलोक से पतित होते समय ही गिरगिट बन गये। वे गिरगिट बन कर एक सूखे कुँये में निवास करने लगे। इस योनि में भी उन्हें पूर्व कालों की स्मृति बनी रही।

समय बीतता रहा। युग का परिवर्तन होकर द्वापर आया। एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न आदि राजकुमार उपवन में घूमने गये वहाँ प्यास लग जाने पर उसी कुँये के पास पहुँचे जो सूखा था और उसमें विशाल गिरगिट पड़ा हुआ था। इस वृतान्त को कौतुहलवश वे भगवान श्रीकृष्ण को बताये। भगवान श्रीकृष्ण उस कुँये पर आये और उन्होंने बायें हाथ से खेल-खेल में अनायास उस जीव को बाहर निकाल दिया।

तत्रागत्यारविन्दाक्षो भगवान् विश्वभावनः।
वीक्ष्योज्जहार वामेन तं करेण स लीलया।।5।।

अ. 64 स्क. 10

भगवान के कर स्पर्श होते ही गिरगिट-रूप जाता रहा और वह स्वर्गीय देव शरीर में बदल गया। भगवान ने सब जानते हुये भी पूछा—महाभाग! तुम कौन हो? किस कर्मवश इस

योनि में आना पड़ा। तुम्हारा सब वृतान्त लोग जानना चाहते हैं। राजा नृग ने भगवान् को प्रणाम करते हुये अपने पूर्ववर्ती जीवन की कथा कह सुनायी। स्तुति करते हुये बोले–भगवान्! आप परमात्मा हैं। बड़े–बड़े योगीश्वर अपने हृदय में ध्यान आपका करते रहते हैं। आप मुझे साक्षात् दर्शन दे रहे हैं। अवश्य अब मेरा भवबंधन कटने का समय आ गया है। प्रभो! आप समस्त भूत में व्याप्त हैं। आपकी शक्ति अनन्त है, आप स्वयं ब्रह्म हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप समस्त योगों के स्वामी योगेश्वर हैं। प्रभो! मुझे आज्ञा दीजिये मैं अब देवलोक को जाता हूँ। श्रेष्ठ विमान पर बैठ नृग देवलोक गये।

स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा,
योगेश्वरैः श्रुतिदृशामलहृद्विभाव्यः।
साक्षादधोक्षज उरुव्यसनान्ध बुद्धेः,
स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य भवापवर्गः।।26।।
नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये।
कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः।।29।।

अ. 64 स्क. 10

पैंसठवें अध्याय में, श्री बलराम जी द्वारिका से ब्रजधाम की यात्रा नन्दबाबा, माता यशोदा, ग्वालबालों एवं गोपियों के विरह व्यथा को शांत करने के लिये गमन की कथा कही गयी है। इसमें गोपियों के साथ वन विहार तथा यमुना का कर्षण हल द्वारा किया जाना वर्णित है। बलराम जी का चित्त ब्रजवासिनी गोपियों के माधुर्य से इस प्रकार मुग्ध हो गया था कि वे दो महीने वसंत के वहीं ब्रज में विहार करते व्यतीत किये। छाछठवें अध्याय में पौण्ड्रक एवं काशिराज के उद्धार की कथा कही गयी है।

करूष देश के मूर्ख राजा पौण्ड्रक अपने को ''भगवान वासुदेव'' समझता था। उसे सब चिढ़ाते रहते थे। वह मन्दमति द्वारका में अपना दूत भेजा। दूत ने पौण्ड्रक का जब संदेश सुनाया तो सभी दरबारी जोर–जोर से हँस पड़े। दूत ने कहा था–महाराज पौण्ड्रक ने कहलवाया है कि मैं ही यथार्थतः वासुदेव हूँ। अतः मेरे चिन्ह अस्त्र–शस्त्रादि छोड़ दो और मेरी शरण ग्रहण करो।

अन्ततः दो अक्षौणी सेना सहित पौण्ड्रक मारा गया। पौण्ड्रक सखा काशिनरेश भी मारा गया। परीक्षित! पौण्ड्रक भगवान के रूप का, चाहे किसी भाव से सदा चिन्तन करता रहता था। उसके सारे बन्धन कट गये। भगवान के बनावटी भेष को वह धारण किये रहता था।

इस स्मरण के कारण वह भगवान के सारूप्यता को ही प्राप्त हुआ।

स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबन्धन:।

बिभ्राणश्च हरे राजन् स्वरूपं तन्मयोऽभवत्।।24।।

अ. 66 स्क. 10

काशीनरेश का पुत्र सुदक्षिण था। उसने पिता का क्रियाकर्म करके दृढ़ निश्चय एवं एकाग्रता से भगवान शंकर की आराधना पितृहन्ता के वध हेतु करने लगा। भोले बाबा उसकी आराधना से प्रसन्न हो वर माँगने को कहा। उसके मन्तव्य को जानकर भगवान शंकर ने कहा—तुम ब्राह्मणों के साथ मिलकर अभिचार विधि से यज्ञ आराधना करो। उससे उत्पन्न शक्ति अभक्त पर करोगे तो तुम्हारा संकल्प सिद्ध होगा।

सुदिक्षण अभिचार विधि से भगवान श्रीकृष्ण को मारने हेतु अनुष्ठान करने लगा। अभिचार पूर्ण होते ही यज्ञकुण्ड से जाज्वलमान अग्निमूर्ति क्रूरता से पूर्ण प्रकट हुई। वह धरती को दोलयमान करता दिशाओं को दग्ध करता द्वारिका की ओर तेजी से अग्रसर हुआ। उसे देख द्वारिकावासी डर गये, वे श्रीकृष्ण भगवान के पास जाकर प्रार्थना की—तीनों लोकों के स्वामी द्वारिका नगरी इस अग्नि से भस्म होने जा रही है। आप हमारी रक्षा कीजिये। भगवान ने आश्वस्त किया—डरो मत, मैं तुम लोगों की रक्षा करूँगा।

भगवान को पता ही था कि काशी से चली यह महेश्वरी कृत्या है। उन्होंने चक्रसुदर्शन को आज्ञा दिया। चक्र सुदर्शन के तेज से कुण्ठित कृत्या लौटकर काशी आ गयी और उसने ब्राह्मण आचार्यों सहित सुदक्षिण को जलाकर भस्म कर दिया। चक्र सुदर्शन यथावत् पुनः भगवान के पास लौट आया।

अध्याय सरसठ और अड़सठ में परीक्षित जी ने भगवान बलराम जी के लोकमर्यादा से विलक्षण परन्तु अलौकिक वृतान्त जानने हेतु भगवान शुकदेव जी से प्रार्थना किया।

श्री शुकदेव जी ने कहा—भौमासुर का सखा द्विविद नाम का एक वानर था। उसमें दस हजार हाथियों का बल था। वह कुलीन स्त्रियों का अपहरण कर उन्हें दूषित कर देता।

एक बार रैवतक पर्वत पर श्री बलराम जी अपनी पत्नियों के साथ विहार करने गये हुये थे। द्विविद वहाँ पहुँच कर उनकी स्त्रियों के सामने अश्लीलता प्रकट करने लगा। बलराम जी उसकी सतत् दुष्ट चेष्टा से कुपित हो गये उन्होंने उसे अपने मूसल से प्रहार किया। वह वानर श्री बलराम जी से द्वन्द्व युद्ध करने लगा। अन्ततोगत्वा श्री बलराम जी ने क्रुद्ध होकर अपने हाथ का भीषण प्रहार गले पर किये जिससे वह वानर खून उगलता धरती पर गिर

पड़ा। आकाश में देवता जय ध्वनि करने लगे। ऋषिगण साधुवाद देने लगे।

इसी प्रकार स्वयंवर में दुर्योधन की कन्या को साम्ब ने अकेले हरण कर लिया। उनका पीछा कर्ण आदि महारथियों ने किया और उन्हें बन्दी बना लिया। श्री नारद जी यह बात द्वारिका में बताये। युद्ध की तैयारी होने लगी तभी बलराम जी ने कहा मैं उद्धव के साथ हस्तिनापुर जाकर पहले कौरवों को समझाता हूँ यदि वे मेरी बात मानकर साम्ब के साथ लक्ष्मणा का विवाह कर देते हैं तो खून–खराबा क्यों करना।

यह बात भगवान श्रीकृष्ण ने भी मान लिया और श्री बलराम जी हस्तिनापुर पहुँच कर बाहर बाग में रुके तथा उद्धव जी को अपना संदेश देकर कौरवों की सभा में भेजा। परन्तु वे मूढ़ श्री बलराम जी के शक्ति से परिचित नहीं थे अतः उन्होंने उनकी अवहेलना किया। अब क्रुद्ध होकर श्री बलराम जी हस्तिनापुर को गंगा जी में डुबाने के लिये अपने दिव्य आयुध हल से खींचने लगे।

हस्तिनापुर काँपने और डगमगाने लगा। कौरव यह देख घबड़ा उठे। उन लोगों ने लक्ष्मणा के साथ साम्ब को आगे कर अपने प्राणों की रक्षा हेतु भगवान श्री बलराम जी के शरण में गये। अपने अपराध के लिये उनसे क्षमा माँगी।

तब जाकर शांत हुये श्री बलराम जी नवदम्पत्ति लक्ष्मणा तथा साम्ब को साथ लेकर द्वारिका को प्रस्थान किये।

शुकदेव भगवान कहते हैं–परीक्षित्! यह हस्तिनापुर आज भी दक्षिण की ओर ऊँचा और गंगा की ओर कुछ झुका हुआ है। जो श्री बलराम जी के पराक्रम का प्रमाण है।

अद्यापि च पुरं ह्येतत् सूचयद रामविक्रमम्।
समुन्नतं दक्षिणतो गंगायामनुदृश्यते।।54।।

(अ. 69 स्कं. 10)

आप जितना कुछ देंगे उसका हजार गुना होकर वह आपके पास लौट आयेगा। इसके लिये धीरज रखना आवश्यक है। हमारा जन्म देने के लिये है लेने के लिए नहीं। जो कुछ भी प्राप्त हो उसे उदारतापूर्वक खुशी–खुशी बाँटते चलो। सुखी जीवन का यही एक राजमार्ग है।

॥ श्री रामलाल प्रभवे नमः॥

सोई जानई जेहि देहुं जनाई.....(4)

जगदीश राए बंसल ''अधम'' 9212434003

गतांक से आगे–

विजय दशमी सन् 1987 अक्टूबर माह में सर्व सिद्ध शक्तिदाता गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के शुभ जन्मदिन महोत्सव पर हम सवाई धाम रुके हुये थे। आराध्यदेव जी ने आश्रम की ऊपरी मंजिल पर केवल मेरे लिए एक कमरा बनवाया हुआ है। मैं उस कमरे में अपने नियमित कार्यक्रमानुसार तीन बजे ध्यान में बैठ गया। ध्यान की उच्च अवस्था में एक क्लिष्ट संस्कार मेरे सामने आया या यूं कहिए कि कोई मुझे मौत के घाट उतारने आया। उसने मुझे आवाज दी कि 'दुर्गा सिंह तोमर है क्या? मैंने कहा, हाँ है, मैं ही दुर्गा सिंह तोमर हूँ। उसने आनन फानन में मेरे ऊपर तलवार से वार किया। क्षण–क्षण, पल–पल के रक्षक, प्राणदाता गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने बड़ी फुर्ती से मुझे एक लोहे का डंडा दे दिया। उसकी तलवार का वार मैंने गुरु कृपा से उस डंडे पर ले लिया। गुरूजी का आशीर्वाद अथवा चमत्कार कहिए कि उसकी तलवार के दो टुकड़े हो गए। यह सब कार्यकलाप उसके सूक्ष्म शरीर द्वारा मेरे सूक्ष्म शरीर पर हो रहे थे। मेरे सूक्ष्म शरीर ने कुछ समय भय अनुभव किया अर्थात् उस संस्कार को भोग लिया। परिणामतः वह सूक्ष्म शरीर रूपी मेरे मौत का पैगाम नौ दो ग्यारह हो गया।

हे कर्म योगी, हे जगत नियन्ता–प्राणदाता लख दातार।
मुक्त हस्त मौत भगाए, कोटि कोटि प्रणाम''

एक बार मैं अकारण दयालु गुरुदेव भगवान की विशेष कृपा प्राप्त करने के उद्देश्य से सवाई धाम जा पहुँचा। उन दिनों श्रावण का महीना था और प्रतिवर्ष की प्रथानुसार रूद्र यज्ञ का आयोजन चल रहा था। एक बजे से तीन बजे का समय छोड़ कर शेष अवधि में पूरे दिन यज्ञ कार्य चलता रहता था। सभी साधकों को गुरू मन्त्र जपने की आज्ञा थी। मुझ पर ऐसी गुरु कृपा बरसी कि मुझे ध्यान में सदाशिव के अर्द्धनारीश्वर स्वरूप के दर्शन हुए। मैं (लेखक) पाठकों को बताता चलूँ कि अर्द्धनारीश्वर भगवान का दर्शन अत्यन्त फलदाई होता है। पुराणों में बताया गया है कि सृष्टि के आदि में विश्वात्मा ब्रह्मा जी ने प्रजा वृद्धि के उद्देश्य से परम शक्ति भगवान त्रिलोचन के निमित एक बड़ा भारी तपोनुष्ठान यज्ञ किया। इस यज्ञ से महादेव जी अति प्रसन्न हुए और वे कष्टहारी शंकर बाबा पूर्ण सचिदानन्द अर्धनारीश्वर

के रूप में ब्रह्मा जी के सन्मुख प्रकट हो गए। ब्रह्माजी उठे और महादेव रूद्र भगवान एवं महादेवी रूद्राणी जी की सुन्दर-सुन्दर उक्तियों द्वारा करबद्ध स्तुति की। तदनन्तर महादेव भगवान ने महामेघ गर्जना की और मंगलमयी वाणी से बोले हे ब्रह्मा, मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हुआ, तुम्हारी कामना के अनुरूप तुम्हें प्रजा जनों की वृद्धि के लिये अभीष्ट वर देता हूँ....। ब्रह्माजी सन्तुष्ट होकर बोले--हे देव, हे देवी सम्पूर्ण शक्तियों का आविर्भाव आपसे होता है। यह प्रसंग भी वृद्धि करने के साथ-साथ मनोरथ पूर्ण करने वाला सिद्ध हो.....। अब लेख पर आते हैं मुझे आज्ञा मिली थी कि तुम महाप्रभुजी का ध्यान करो, कठिन प्रारब्ध आ रहे हैं। सावधान होकर तपस्या करो।

मैं घर आकर श्री महाप्रभु जी को प्रसन्न करने के लिए रात भर बैठा-बैठा मन्त्र जप करता रहता-ध्यान करता रहता। ध्यान की उच्च स्थिति हो जाने पर इष्टदेव क्रियाशील हो जाते हैं। वे हिलने लगते हैं, बोलने लगते हैं, आशीर्वाद देते हैं, अपने गले लगाते हैं। इस प्रकार रात्रि को ध्यान में श्री महाप्रभु जी के रूप में तीव्र कठोर आवाज आई कि दुर्गा सिंह तुमने पाप किए हैं। राज के मद में सात्विक व्यक्तियों, साधुओं..... के प्रति अत्याचार किए हैं, जिनका दण्ड तुम्हें अवश्य मिलना चाहिए। क्योंकि मैं न्यायकर्ता हूँ। मैं बुरी तरह काँप उठा। गुरुदेव के चरण पकड़ कर बार-बार क्षमा याचना करने लगा, रोने लगा। ध्यान में गुरु चरणों में चरण पकड़ कर रोना भाग्यशाली को ही नसीब होता है। मुझे ऐसा आनन्द आया कि जिसकी कोई कल्पना नहीं कर सकता हूँ। मेरा जीवन सफल हो गया। गुरूजी ने मेरे समस्त अपराध क्षमा कर मुझे गले लगा लिया, कहने लगे बेटा मैं तुम्हारे बारे में कुछ सोच रहा हूँ...इत्यादि।

इसके पश्चात् मैं दिल्ली आश्रम आ गया। रात्रि के ध्यान में देखता हूँ कि श्री प्रभुजी ने मुझे कैदियों के काले कपड़े पहना कर एक कैद कोठरी में बन्द कर रखा है। मैं सोचता रहा कि मैं कैदी हूँ और अपने किए पापों की सजा काट रहा हूँ। मेरा ध्यान खुला तो प्रातः के चार बजे थे। मैंने स्वयं को गुरूजी के कमरे में बिस्तर पर लेटे पाया। श्री प्रभु जी की इस लीला से मैं चकित हो गया। मेरे खतरनाक अपराध यूं सूक्ष्म रूप से कट गए। शेष छोटे-मोटे संस्कार काटने में मुझे बारह वर्ष लग गए। गुरूजी की कितनी असीम कृपा है मुझ पर। गुरू कृपाओं का कोई अन्त नहीं है। मुझे वीर हनुमान जी महाराज, सूर्य नारायण भगवान, जगत जननी अष्ट भुजी माँ..... के दर्शन, वार्तालाप एवं आशीर्वाद का सौभाग्य, जगत नियन्ता-आराध्यदेव गुरुदेव की असीम कृपा से ही सुलभ रहे हैं।

सन् 1967 के मई माह की बात है। मैं उस समय रतलाम में जिला एक्साईज अधिकारी था। मेरे नियमानुसार मुझे गर्मियों मे ऋषिकेश रहकर 40 दिन का तीव्र एकान्तवास करना था। गुरू आज्ञा में रहकर, एक समय भोजन, दो बार गंगा स्नान, मौन धारण, रात्रि 10 बजे

से दो बजे तक का समय छोड़ कर, शेष समय मंत्र–जप–ध्यान करता था। जब चालीस दिन का अनुष्ठान पूर्ण हो गया तो मेरे मन में आया कि इस अनुष्ठान से मुझे क्या आध्यात्मिक प्राप्ति हुई? मेरे इस मनोभाव को अन्तर्यामी जी जान गए। उस दिन रात्रि ग्यारह बजे मैं तीव्र ध्यान में प्रवेश कर गया। ध्यान में देखता हूँ कि मैं अपने पैतृक ग्राम के आम के बाग में पोखर किनारे एक पेड़ के नीचे चारपाई पर भयानक रोगग्रस्त अवस्था में पड़ा हूँ। चारपाई के आस–पास रिश्तेदार, सम्बन्धी एवं ग्रामीण लोग बतिया रहे हैं कि यह एक साल से बीमार है ठीक होना मुश्किल है.....इत्यादि।

चैन आए भी तो कैसे आए, घरवालों को।
एक जाता है तो–दो आते हैं समझाने को।।

अचानक घड़ी का अलार्म बजा और मैंने उठ कर देखा तो दो बज गए हैं, मेरी दिनचर्या का समय हो चला है....। छुट्टियाँ समाप्त होने के कारण प्रातः नौ बजे मैं रतलाम लौटने के लिए गुरु आज्ञा लेने गया तो विश्व नियन्ता जी मुस्काए और बोले, लल्ला तुम्हारी शंका का समाधान हुआ या नहीं? संकोची भाव से मैंने अपना सिर हिला कर सकारात्मक पुष्टि की। एक वर्ष की असाध्य बीमारी मात्र तीन घण्टे में समाप्त होना महा सिद्ध गुरू देव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज की ही विशेष अनुकम्पा है। ऐसे देखा गया है कि स्वाध्याय शील ध्यान योगी तथा गुरू भक्त साधक का कर्म–भोग का भुगतान स्वप्न में भी हो जाया करता है। जो आज्ञा चक्र में गुरुदेव का ध्यान करता है, वह प्रकृति के दायरे से आगे निकल जाता है। जैसे ही गुरुदेव द्वारा शक्तिपात हुआ वह तुरन्त समाधि को प्राप्त हो जाता है। मगर याद रहे कि शेरनी का दूध सोने के पात्र में ही ठहरता है। जिसने गुरू के थपेड़े नहीं खाए वह गहरा शक्तिपात हो जाने पर भी साधना से भटक सकता है। श्रद्धावान ही ज्ञान का अधिकारी है। जब साधक शरणागति पा जाता है तो गुरू केवट बन कर पतवार का संचालन करने लगते हैं। जब साधक गुरू का ध्यान करता है तो गुरू के तेजस परमाणु उसके परमाणु में मिल जाते हैं। तप से ही संचित पापों का नाश होता है या यह कहिए कि पराकाष्ठा पा जाने पर साधक के समस्त कर्म संस्कारों का क्षय हो जाता है। चाहे पापों का पहाड़ ही क्यों ना खड़ा हो। यह योग विद्या भाग्य से ही मिलती है इसको जान लेने से और कुछ जानना शेष नहीं रह जाता।

वह न तोल कर देता है, न बोल कर देता है।
जब वह रीझ जाए तो दिल खोल कर देता है।
जय गुरु देव !

2021-नववर्ष के अभिनन्दन में

(त्रिभाषा-रचित (संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिन्दी)

पद्यात्मिका-स्वरचनायें

-द्वारका प्रसाद शर्मा,
306-ए (अभिषेक, प्रिया-निकुंज) एलडीको-उदयन-2,
रायबरेली, लखनऊ-226025

(संस्कृत भाषायाम्)

कालोऽयं समुपाहरत्यनुदिनमस्नतियं वाडप्रियम्,
संयोगं कुरुते तथा विदधते क्लेशान् वियोगात्मकान्।
जानीते न ततो वराक मनुजो कालस्य रचनामिमाम्,
एवं वर्षमतीतमप्यपगतमहो कालप्रभावे जगत्।।1।।

कालातीतो न भवितुमर्हो शंकरान्नापरोऽन्यः,
तेषामेवाश्रितानां भवतु यदि भवेदामास्पदं नो।
संसारे येऽनुरक्ताः कथमिह न ते दुःखदग्धा भवेयुः,
संलब्धेषु कलेवरेषु द्वन्द्वविषये को यो न शेषायितः।।2।।

वर्षे नवीने समुपागतेऽस्मिन्,
नूनं भवन्तमप्यभिनन्दयेऽहम्।
तथा प्रार्थयेऽहं भवतां कृते च,
नीरुक्-वपुर्मानमयञ्च जीवनम्।।3।।

(हिन्दी)

यही काल जो प्रिय वा अप्रिय दिन-प्रतिदिन ले आता है,
संयोगों को यही कराता और प्रियों से बिछुड़ाता है।
कालजयी की संरचना को मनुज बिचारा नहीं जानता,
कालबद्ध यह सकल विश्व है, ऐसे यह गत वर्ष व्यतीता।।1।।
कालजयी परमेश्वर के बिन, कोई अन्य न हो पाया,
उनका आश्रय परमाश्रय है, जिनसे सब कुछ सबने पाया।

संसारी जन तज उनको ही, जीवन दुश्चिन्तामय जीते हैं,
धरा नुज तन कैसे सोचें, द्वन्द्व क्लेश से हम रीते हैं।। 2।।

नये वर्ष के इस शुभारम्भ में मैं,
शब्दाभिनन्दन बस कर रहा हूं।
नीरोग तन युत, धन–मान दोनों,
जीवन रहे प्रार्थना कर रहा हूं।। 3।।

May the New Year be a Blissful one

(This is in English Verse of Sanskrit Verses)

Its the Time that conveys the news, be those pleasant or the unpleasant ones,
Its that very Time causing unions & the disunions from our dearest ones.
The poor human being does never perceive the statute of the Omnipotent Time,
Tried with the Time is the entire Universe, hence the year last has gone past again once.

None else is the Victor of Time other than the Lord of the Universe,
This resort is only the greatest resort which bestows upon ever to every one.
A temporal life shrouded with worries lead the worldly people bereft of him,
Being in human form how can one think to carry on one's own life without worry or shun.

On this auspicious beginning of the New Year
I pray my heartfelt homage to you.
May God also shower His Blessings
Of Health with wealth, name and fame unto you.

''ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः''

आश्रम-धर्म

श्री प्रभु जी का एक अकिंचन बालक—अन्तू राम यादव (मौनीबाबा)

प्रातः स्मरणीय महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं योग-योगेश्वर अनन्त श्री सद्गुरुदेव भगवान के युगल कमलवत् चरणों में नमन करते हुए मैं आज कुछ अपने व्यक्तिगत विचार आपसे साझा करना चाहता हूँ। जब मैं आश्रमों में विशेष रूप से किसी उत्सव के समय जयपुर आश्रम में आता हूँ और यहाँ पर स्थाई अथवा अस्थाई रूप से रह रहे भाई-बहनों को देखता हूँ तो मेरे मन में यह भाव बनता है कि आश्रम-धर्म के बारे में कुछ चिन्तन किया जाये क्योंकि आश्रम मे जैसी दिनचर्या होनी चाहिए कुछ लोगों का कुछ अलग किस्म का व्यवहार देखने को मिलता है। हो सकता है, यह मेरा दृष्टि-दोष हो। मेरे इस विचार से अगर किसी भाई-बहन की भावनाएँ आहत होती हैं तो मैं उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। वैसे मेरा विचार किसी की भावनाओं को आहत करने का नहीं है बल्कि आश्रम-धर्म के बारे में कुछ विचार व्यक्त करना है जो पाप-पुण्य अर्जन में एक अहम भूमिका अदा करता है।

मेरे एक वरिष्ठ गुरु भाई हैं, अलीगढ़ जिले में उनका आश्रम है। कई बार मुझे वहाँ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। एक अवसर पर कुछ बच्चों की तरफ संकेत करके वे कह रहे थे—आश्रम का मतलब समझते हो? आश्रम का मतलब होता है—आ अर्थात् आओ और श्रम अर्थात् श्रम करो। यानी आश्रम में आये हो तो परिश्रम करो, आश्रम की सेवा करो। आश्रम में आकर हम आश्रम की वस्तुओं का उपयोग करते हैं और अगर आश्रम की सेवा नहीं करते तो हम आश्रम के ऋणी हो जाते हैं। ये बातें मेरे दिमाग में गूँजती रहती हैं। मैं तो जयपुर आश्रम में आता हूँ, कई दिनों तक रह जाता हूँ, आश्रम का ही खाता-पीता हूँ और बच्चों की सेवा भी लेता हूँ परन्तु आश्रम के लिए कुछ भी नहीं करता। जब से आश्रम-धर्म के बारे में कुछ सन्तों के विचार मुझे सुनने और पढ़ने को मिले हैं तब से मेरा मन बार-बार इस तरफ दौड़-दौड़ कर जाता रहता है कि आश्रम-धर्म के अनुसार मैं तो हर बार यहाँ से ऋणी ही बनकर घर वापस लौटता हूँ।

किसी उत्सव के समय जब मैं इस आश्रम में दूर–दराज से आये हुए भाई–बहनों के साथ रहता हूँ और कुछ लोगों से यह सुनता हूँ कि यहाँ तो खूब मजा है–समय से अच्छा–अच्छा नाश्ता मिलता है और स्वादिष्ट भोजन मिलता है, ऐसी व्यवस्था तो अपने घरों में भी नहीं होती। इस प्रकार देखने में आता है कि आश्रम में जो खाद्य पदार्थ मिलता है उसमें अधिकांश लोगों की भोजन–वृत्ति ही रहती है जब कि आश्रम–धर्म के अनुसार उसमें प्रसाद–वृत्ति होनी चाहिए। प्रायः यह देखने में आता है कि जब कोई आश्रम का बच्चा प्रसादी के लिए बुलाने आता है तब हममें से कुछ भाई पूछ बैठते है कि प्रसादी में आज क्या बना है? जब उनकी रुचि के भोजन का उत्तर मिलता है तब वे कहते हैं–चलो आ रहे हैं और जब उनका मन–पसंद भोजन नहीं रहता तब वे कहते हैं कि आज भोजन करने की इच्छा नहीं है, मेरे कमरे में दूध और फल भिजवा देना। इस प्रकार की भावना आश्रम धर्म के बिल्कुल विपरीत है। आश्रम का हर खाद्य–पदार्थ श्री प्रभुजी का प्रसाद है, जब इस भाव से हम ग्रहण करेंगे तभी वह फली–भूत होगा। आश्रम के प्रत्येक खाद्य–पदार्थ को प्रसाद समझ कर बड़े ही सम्मान के साथ ग्रहण करना चाहिए।

स्वामी मुक्तानन्द परमहंस जी महाराज सिद्धयोग के एक महान संत हुए हैं। आश्रम–धर्म के बारे में उनके विचार कुछ इस प्रकार है–"आश्रम का कभी ऋणी नहीं होना चाहिए। यह ऋण इतना भयंकर होता है कि एक मारक हथियार की तरह हमारा पीछा करता रहता है। हम कुछ भी करें, वह हमारा पीछा नहीं छोड़ता। आश्रम में रहना बहुत बड़ी जवाबदारी है। आश्रम में रहने के लिए व्यक्ति को बहुत बुद्धिशाली होना चाहिए। यहाँ तपस्या–रहित बन कर बिल्कुल नहीं रहना चाहिए। आश्रम में आश्रम के योग्य प्राणियों को ही रहना चाहिए, नहीं तो वे आश्रम को खराब कर देंगे।" अगर हम आश्रम में है तो नियमित रूप से सुबह–शाम श्री प्रभुजी की आरती में शामिल होना चाहिए। सत्संग के समय दरबार में जरूर उपस्थित रहना चाहिए। प्रायः कुछ लोग आरती और सत्संग के समय भी अपने कमरों में खर्राटे भरते हुए मिलते है, यह आश्रम–धर्म के बिल्कुल विपरीत है। आश्रम में खाने–पीने और मौज–मस्ती का भाव बिल्कुल नहीं होना चाहिए। मुक्तानन्द जी कहते हैं–"आश्रम में इस भाव से रहने वाले को "**पाप का कीड़ा**" नाम देना ही उचित है। आश्रम का अन्न–जल, बिजली, कपड़ा, स्थान सबको "**धर्म**" का समझकर उपयोग करना चाहिए, नहीं तो वह ऋण बनकर हमारा पीछा करता रहेगा। आश्रम में जो इस धर्म का पालन करते हैं उन्हें यहाँ का पूरा लाभ मिलता है और पुण्य में वृद्धि होती है।

परम् श्रद्धेय स्वामी मुक्तानन्द जी आश्रम–धर्म के बारे में आगे और कहते हैं–आश्रम में रहने वाले एवं आने–जाने वाले लोगों को आश्रम का ऋणी नहीं होना चाहिए। आश्रम के प्रति मन में सदैव ऊँची भावना रखनी चाहिए। आश्रम में रहने वाले भजन–ध्यान करते हैं, तप करते हैं। वे अपने रक्त को देकर योग–पद्धति से आश्रम को बनाते एवं रख–रखाव करते हैं। उसका ऐसे ही उपयोग करने वाला किसी यम–यातना का संचय कर रहा है–ऐसा मेरा मानना है। जो आश्रम की सेवा करते हैं, शौचालय साफ करते हैं, कचरा उठाते हैं, झाड़ू–पोंछा लगाते हैं, कपड़े धोते हैं, अन्न बीनते हैं–वे भिखारी नहीं हैं, वे अच्छे–अच्छे लखपति–करोड़पति घरों के पढ़े–लिखे लड़के–लड़कियाँ हैं। वे ऊँची लायकी के लोग हैं। अच्छे हृदय के हैं। उनके द्वारा बनाये गये और सजाये गये आश्रम का बहुत प्यार और सम्मान के साथ उपयोग करना चाहिए और सतत् यह ध्यान रखना चाहिए कि आश्रम की कोई भी वस्तु खराब न हो, आश्रम का वातावरण दूषित न हो, हमसे कोई गलती न हो, आश्रम की सम्पदा खराब न हो और किसी भी तरह से हमारा पुण्य क्षीण न हो। आश्रम सद्गुरु का उच्च स्थान है जहाँ से हमें शान्ति–परम् शान्ति मिलती है। आश्रम सद्गुरु का हृदय है, यही भाव निरन्तर मन में होना चाहिए।

आश्रम–धर्म के बारे में स्वामी मुक्तानन्द जी का कहना है कि–आश्रम में रहने वालों को बड़ी सावधानीपूर्वक जीवन बिताना चाहिए। आश्रम गुरुजनों का दरबार है इसे सिद्धपीठ के रूप में मानना चाहिए। आश्रम धधकती हुई प्रज्ज्वलित योगाग्नि का केन्द्र है। जैसे यह अग्नि पाप को पूर्णतया जलाकर योगेश्वर बनाने की क्षमता रखती है वैसे ही आश्रम में रहते हुए साधना रहित, विषय विकारों से युक्त जीवन बिताने वालों का पुण्य भी जलाकर घटा सकती है। आश्रम में वासनाओं का विलास कदापि नहीं होना चाहिए। आश्रम में रहते हुए अन्य सभी लोगों में अपने आत्म–स्वरूप गुरुदेव की ही छवि देखनी चाहिए, इससे ध्यान उत्तरोत्तर बढ़ेगा। आश्रम में रहते हुए किसी का गुण–दोष नहीं देखना चाहिए। जो दूसरों में दोष देखते हैं, वे योग की शक्ति को घटाने का काम करते हैं। आश्रम में अमर्यादित, स्वछन्द व्यवहार नहीं करना चाहिए। जहाँ–तहाँ बैठ कर गप्पबाजी, लोक–निन्दा, दोषारोपण एवं अनावश्यक वाद–विवाद नहीं करना चाहिए। ऐसा व्यवहार योग–सिद्धि को नष्ट कर देता है। आश्रम के प्रति निष्ठा, श्रेष्ठ आचरण, सत्कर्म एवं नियमित जीवन होने से ध्यान की उच्च अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है।

अपनी भूलों और त्रुटियों के लिए क्षमा याचना करते हुए स्वयं सहित सभी भाई-बहनों एवं बच्चों से यह विनम्र निवेदन करना चाहूँगा कि अगर हम आश्रम-ऋण से बचना चाहते हैं और अपना पुण्य बढ़ाना चाहते हों तो हम सबको आश्रम-धर्म का यथाशक्ति अवश्य पालन करना चाहिए। सद्गुरु देव भगवान से निम्नांकित प्रार्थना के साथ अब मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।

"हे दिव्य ज्योति के भण्डारी, सद्ज्ञान सुगति के दाता।
तेरे पद कमल पूजने को, मस्तक मेरा झुक जाता।।
जग के इस घातक दल-दल से, हे नाथ उठालो मुझको।
हो परम सम्मिलन जिस पथ से, वह राह दिखा दो मुझको।।"

सादर जय गुरुदेव !

301, न्यू मेंहदौरी, तेलियर गंज,
प्रयागराज-211004
फोन-09936678368

अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्याः
अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं हंसो
यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्।।

-आचार्य चाणक्य

वेद शास्त्र अनन्त हैं और विद्यायें भी बहुत हैं। दूसरी ओर समय बहुत कम है और विघ्न बहुत हैं, अतः इन शास्त्रों में जोर सार है, उसे ग्रहण करना चाहिये। जैसे हंस दूध और पानी के मिश्रण में से दूध को ग्रहण कर लेता है और पानी को छोड़ देता है।

अन्तर्मौन द्वारा योग-साधना

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा एम. ए. एम-एड.

प्रदूषण की समस्या महानगरों में दिन प्रतिदिन भयंकर होती जा रही है। मोटर, स्कूटर, कार, हवाई जहाज, रेलगाड़ी आदि का धुँआ तथा होर्न की आवाजें कानों को तथा आँखों को व्याधिग्रस्त बना रही हैं। कल-कारखानों की खट-पट तथा धुँए की चिमनियाँ सर्वत्र अशान्ति एवं कार्बन का भण्डार पैदा करने में लगी है जिससे श्वास-प्रणाली तथा कर्ण कुहरों के माध्यम से सिर पर धमाका करने वाली व्याकुलता के कारण अधिकांश व्यक्ति विक्षिप्त या असामान्य या रोगग्रस्त होते जा रहे हैं। भूमिगत मलप्रणाली के संचय तथा नदियों में उसका विसर्जन करने के कारण जल तथा पृथ्वी दूषित होकर नाना प्रकार की व्याधियों का जन्म हो रहा है। बाह्य जलवायु के दूषित होने के साथ-साथ मानसिक प्रदूषण भी कम नही हो रहा। जिधर देखिये भाषण, गाने, शोर शराबा। रेडियो व ग्रामोफोन के गाने, धार्मिकता के नाम पर तरह-तरह के तमाशे नाक में दम पैदा कर रहे हैं। जिसको देखिये उसे बोलने की बीमारी हो गई है। हर व्यक्ति अपनी कहना चाहता है। बोलता चला जाता है। उसे इस बात की कतई परवाह नही है कि उससे सुनने वालों का क्या कुछ भला हो रहा है? कवि को कविता सुनने वाले चाहिए। नेताजी को भाषण सुनने वाले चाहिए। यदि कोई सुनने वाला नही मिलता तो आदमी अपने से ही बातें करने लग जाता है। पेड़-पौधों से बातें करने लगता है। चलते-फिरते बुद-बुदाते जाता है। मनोविज्ञान में इसे सिजोफ्रेनिया बीमारी का लक्षण माना जाता है, जिसका कारण दमित भावनायें हैं। बोलने वाला अपने मन में जो कुछ अशान्ति होती है उसे सुनने वाले के मन में उतार देना चाहता है। ऐसे व्यक्ति आध्यात्मिक साधना के अधिकारी तीन काल में भी नहीं हो सकते। क्योंकि अधिक बातून जो कुछ बोलेंगे उसमें नब्बे प्रतिशत झूठ, बुराई व परनिन्दा होगी और दस प्रतिशत काम की बात होगी। इससे पापकर्म का समुच्चय बढ़ता जायेगा तथा शक्ति का अपव्यय होगा। पर्यावरण प्रदूषण समस्या भी बढ़ती जायेगी। कुत्सित विचारों की लहरें, वातावरण में व्याप्त होकर शान्त मन को भी उसी प्रकार अशान्त बना देंगी, जिस प्रकार शान्त तालाब में कोई पत्थर फेंक दे तो पूरे तालाब में लहरों की शृंखला पैदा हो जाती है।

आध्यात्मिक साधना का मूलमंत्र है—शक्ति संचय करना। कम से कम शक्ति खर्च की जाये तभी शक्ति संचय हो सकती है। शक्ति संचय से एकाग्रता प्रतिपादन सरल होता है।

शक्तिहीन को क्रोध अधिक आता है और नाना प्रकार की कल्पनाओं में विचरण करता रहता है। जो शक्ति सम्पन्न है वह शान्त, एकाग्र और दृढ़ निश्चयी होगा। मनुष्य द्वन्द्व में जीता है और फिर यह भी चाहता है कि उसे शान्ति और समाधि भी उपलब्ध हो जाये। कई नावों में एक साथ सवारी करने से किसी भी लक्ष्य की उपलब्धि नहीं हो सकती। हमारी कठिनाई यह है कि न हम पूरी ईमानदारी से भोगी ही बनते हैं और न योगी। दोनों हाथों में लड्डू चाहते हैं। योग प्राप्ति के लिए मौन से बढ़कर शीघ्रगामी कोई और उपाय नहीं है। जैसे को तैसा मिला करता है–यह एक सामान्य नियम है। ईश्वर या ब्रह्म मौन है जैसा कि स्कन्दपुराण में भगवान शंकर ने पार्वती जी से कहा भी है–

अगोचरं तथाऽगमंनाम्
रूप विवर्जितम्।
निः शब्दं तद् विजानीयात्
स्वभावं ब्रह्म पार्वति।।

अर्थात् हे पार्वती। ब्रह्म का स्वभाव शान्त, मौन तथा निःशब्द है। बहु नाम रूप तथा इन्द्रियातीत है। सन्तों ने भी कहा है कि–''इन्द्रिय मन का विषय नहीं, वहाँ है बुद्धि व्यवहार।'' अर्थात् ब्रह्म, इन्द्रियों के मन तथा बुद्धि के विषयों से परे शान्त एक रस सम है। उसको पाने के लिए हमें भी इन्द्रिय विहीन, मन रहित तथा बुद्धि के चिन्तन कर्म से परे होना पड़ेगा। एकान्त में प्रिय से मिलन होगा। हमारी सबसे बड़ी परेशानी यह है कि हम इधर–उधर जंगलों पहाड़ों में एकान्त ढूँढ़ने फिरते हैं। हमारे अन्दर–बाजार है, शोरगुल है। हम अकेले में भी अकेले नहीं हैं, सारी दुनिया की याद, चिन्ता और परेशानी से हर दम भरे हुए हैं। हमने प्यारे के लिए अपने दिल को थोड़ा देर भी तो खाली नहीं किया और शिकायत करते हैं कि हमारा ध्यान नहीं लगता, दर्शन नहीं होते। कुछ देर ही हम जितेन्द्रिय हो जायेंगे। कामक्रोध लोभ मोह से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रह जायेगा, मन की उधेड़बुन, संकल्प–विकल्प को थोड़ी देर बन्द कर मन को मौन कर लें तो निःसंकल्पता स्वतः उपलब्ध हो जायेगी। इसी तरह बुद्धि का मौन–चिन्तन विचार–शून्य स्थिति उपलब्ध होते ही समतावस्था आ जायेगी। उसके आते ही–योगदर्शन में महर्षि पतंजलि कहते हैं–

निर्विचार वैशारऽद्येध्यात्म प्रसादः

अर्थात् वार्ता में निर्विचार स्थिति आते ही आत्मिक सुख की अनुभूति होगी–शान्ति और प्रकाश का अनुभव होगा। अंग्रेजी भाषा में एक कहावत प्रसिद्ध है–

Speech is Silver but Silence is gold.

अर्थात् वार्ता की अपेक्षा मौन हजार गुना कीमती है। वाणी, मन तथा बुद्धि–तीनों का मौन सध जाय तो मौन में रहने वाले के साथ बात–चीत होने लगेगी।

रसना तथा जिह्वा एक ही इन्द्रिय है किन्तु उसके दो कार्य हैं–बोलना तथा आस्वाद लेना। ईश्वर ने कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को अलग–अलग बनाया है किन्तु जिह्वा को कर्म और ज्ञान दोनों कार्य करने की स्वतन्त्रता दे दी है। इसी इन्द्रिय के ठीक–ठीक व्यवहार से व्यक्ति परमात्मा को उपलब्ध हो सकता है और इसके दुरुपयोग से इस लोक में झूठा, बेईमान, कहाकर अपयश लेता है तथा भक्ष्याभक्ष्य का आहार कर बुद्धिभ्रष्ट हो नरकगामी बनता है।

प्रिय सत्य तथा हितकारी सत्य बोलना सर्वोत्तम तप है। इसका पालन न हो सके तो मौन साधना सबसे अच्छा तप है। शब्द से यदि अपने विचार प्रकट करने पर हमने नियन्त्रण कर लिया और हाव–भावों से भी विचार प्रकट नहीं करते तो यह स्थिति काष्ठ मौन स्थिति कहलाती है। जब ज्ञान की परिपक्व दशा उपलब्ध हो जाती है तो 'ज्ञाने मौनम्' की स्थिति आती है जिसे 'सुषुप्ति मौन दशा' कहते हैं। वाणी व्यवहार के लिए–कहने वाला, सुनने वाला तथा बातचीत का विषय–ये तीन बातें आवश्यक हैं। पूर्णज्ञान हो जाने पर सुनने वाला और कहने वाला तथा विषय तीनों ही जब ज्ञानरूप हो गये–एक हो गये तो कौन किससे क्या कहे। मौन–केवल मौन–मौन के सिवा और कुछ नहीं ये स्थिति पूर्ण ज्ञानी की होती है।

अध जल गगरी छलकत जाय।
भरी गगरिया पूरित जाय।।

विचार संकल्प तथा विषयतृष्णा जिस क्षण लुप्त हो जाते हैं उसी क्षण हम हद से परे अनहद में पहुँच जाते हैं। हमारी इच्छा, क्रिया व ज्ञान शक्ति अनन्त के साथ एक रस हो जाती है उस समय हमारी वाणी 'ऋतम्भरा' से निकलती है जो कि सत्य के सिवाय और कुछ नहीं होती। अमोघवाणी मौनदशा में ही प्राप्त होती है। उस अवस्था में जैसा चिन्तन किया जाय वैसा परिणाम अवश्य सामने घटित होता है। शाप वरदान इसी अवस्था में सत्य होते हैं। क्योंकि इस स्थिति में हमारा सम्बन्ध अनन्त शब्द राशि, अनहद नाद तथा सत्–चित्–आनन्द से डाइरेक्ट हो जाता है। मौन से सुषुम्ना द्वार खुलता है, भावनाओं तथा संवेगों पर जबरदस्त नियंत्रण हो जाता है। धैर्य, मन की शान्ति, आत्म विश्वास, एकान्तप्रियता, संकल्प शक्ति का विकास तथा ऊर्ध्वरेतस प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव होता है। मौन साधना आत्मतप है। बौद्ध–धर्म में सम्यक् वाक् को नियमों के अन्तर्गत बहुत महत्त्व दिया गया है। अष्टमार्ग के अभ्यास से सम्यक् ज्ञान की प्रतीति एवं स्थिति होती है।

जिन्हें मौन होने की कला आ गई वे भीड़ में रहकर भी एकान्त का आनन्द ले सकते हैं तथा घर में रहते हुए ही वन का सुख प्राप्त कर सकते हैं। मौन में पहुँचकर ब्रह्मा, विष्णु, भगवान सदाशिव का ध्यान करने से चटपट समाधि सिद्ध होती है। वाणी से कुछ न कहना ही मौन नहीं है बल्कि मन और बुद्धि का अन्तर्मौन सच्चा मौन है। जो वाणी से कुछ नहीं कहते किन्तु मन में विचारों की खिचड़ी पकाया करते हैं उन्हें भगवान श्रीकृष्ण ने मिथ्याचारी, ढोंगी तथा पाखण्डी कहा है–

कर्मेन्द्रियाणिं संयम्य
य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा
मिथ्याचारः स उच्यते।। 3/6

इन्द्रियों के बाह्य व्यापार को रोकने पर अन्तर्मुखी बना जा सकता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी राक्षस अज्ञान के द्वारा आत्मा को आणव मलों से आवृत्त कर देते हैं। भगवान कृष्ण कहते हैं–

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ
नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं
ज्ञान विज्ञान नाशनम्।। 3/41

ज्ञान विज्ञान को नष्ट करने वाली पाप रूपी इच्छा को इन्द्रिय जय के द्वारा हे अर्जुन नष्ट करो क्योंकि इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इस इच्छा के अधिष्ठान हैं।

मौन साधना से पराभक्ति की प्राप्ति हो जाती है। निर्भराभक्ति पाकर जप–तप–संयम करने नहीं पड़ते ईश्वर की वृथा यहाँ प्राप्ति होती है तथा साधन स्वतः हो जाते हैं। कबीर ने इस अवस्था का वर्णन किया है–

माला जपूं न कर जपूं
मन में जपूं न राम।
राम हमारा हमें जपे
हम पायें विश्राम।।
कबिरा मन निर्मल भया
जैसे गंगा नीर।
पीछे–पीछे हरि फिरैं
कहत कबीर कबीर।।

मौन साधना सच्चे अर्थों में हो जाये तो साधक योगी बन जाता है, जीवन्मुक्त हो जाता है। कुलार्णवतंत्र के नवमोल्लास में कहा गया है कि जिसका इन्द्रिय समूह निष्पन्द हो गया है, वह जीवन्मुक्त है। जिसने वायु को अपने में लीन कर लिया है, जो मृतवत् हो गया है, वह जीवन्मुक्त है। जिसका वायु–संचार नष्ट हो गया है, द्वन्द्व सहन में पाषाणवत् जो स्थित है, परमात्मतत्त्व का जिसे पूर्णज्ञान है, जो जाग्रत और स्वप्न अवस्था में भी सुषुप्तिवत् स्थित रहता है, वह योगी हो जाता है। जिसकी बाहर सूंघने, सुनने, स्पर्श करने और देखने की क्रिया रुक गई है तथा सुख–दु:ख में एक रस है, नि:संकल्प और विचार बोध–विहीन हो काष्ठवत् मौन हो गया है, परम शिव में लीन होकर वह समाधिस्थ रहता है। जैसे गहरे अंधेरे में व्यक्ति कुछ भी नहीं देख पाता उसी प्रकार योगयुक्त को यह प्रपंच भासित नहीं होता। इस प्रकार मौन–साधना से देहाभिमान नष्ट हो जाने पर परमात्मज्ञान, आत्म तुष्टि युक्त होकर योगी का जहां भी मन जाता है वहीं–वहीं उसे समाधि अवस्था प्राप्त होती रहती है। परमात्मा के दर्शन कर हृदय की ग्रन्थियाँ (ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र ग्रन्थि) खुल जाती हैं, सभी संशय नष्ट हो जाते हैं तथा कर्म समुच्चय का आत्यान्तिक क्षय हो जाता है। उसके पश्चात् योगी की सर्व कर्म निवृत्ति ही सर्वोत्तम पूजा है, मौन ही सर्वोत्तम जप है, विचार रहित होना ही सर्वोच्च ध्यान है और किसी प्रकार की इच्छा न होना ही परम फल है–'जिनको कछू न चाहिए वे शाहन के शाह।'

निष्पन्द करणग्रामः
स्वात्मलीन मनोऽनिलः।
य आस्ते मृतवत्साक्षात्
जीवन्मुक्तः स उच्यते।।
प्रणष्ट वायु संचारः
पाषाण इव निश्चलः।
परजीवैक–धामज्ञो
योगी योग विदुच्यते।।
स्वप्न जाग्रत् अवस्थायां
सुषुप्तिवत् योऽवतिष्ठते।
नि:श्वासोच्छ्वास–हीनश्च
निश्चितं मुक्त एव सः।।
न श्रृणोति न चाघ्राति
न स्पृशति न पश्यति।

न जानाति सुखं दुखं
न संकल्पयते मनः।
न चापि किंचिज्ज्ञानाति
न च बुध्येति काष्ठवत्।
एवं शिवे विलीनात्मा
समाधिस्थ इह उच्यते।।
यथा गाढान्धकारस्थो
न किंचिदिह पश्यति।।
अलक्ष्यञ्च तथा योगी
प्रपञ्चं नैव पश्यति।।
देहाभिमान गलिते
विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनो याति
तत्र तत्र समाधयः।।
भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छि–
द्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि
तस्मिन्दृष्टे परात्मनि।।

× × × ×

अक्रियैव परा पूजा
मौनमेव परो जपः।
अचिन्त्यैव परं ध्यानं
अनिच्छैव परं फलम्।।

कुलार्णव तंत्र 9/38

साधना की भाषा मौन ही है। जो बहुत कहते और बहुत सुनते रहते हैं वे चिकने घड़े और उच्च पर्वत शिखर बन जाते हैं। उनके हाथ तर्क के बाण भले ही आ जायें भक्ति का उदय कम हो पाता है। मौन की भाषा में ही आत्मानन्द कहा जा सकता है। शब्द से कहने पर ब्रह्मानन्द झूठा हो जाता है–सेकिण्ड हैण्ड हो जाता है। शब्द साया की भूमिका पर रहता है। उससे परे निःशब्द अवस्था है, वही ब्रह्म है। गुरुदेव का असली उपदेश मौन में ही होता

है और मौन रहकर ही वे हृदय चक्की को चुपचाप इच्छित दिशा में घुमा देते हैं। मौन व्याख्यान से ही गुरुदेव शिष्यों के सारे सन्देह चूर कर देते हैं। शास्त्रों में कहा गया है—

गुरोस्तु मौन व्याख्यानं
शिष्यास्तु छिन्न संशयाः।

सच्चितत्व, इन्द्रिय, मन–वाणी से परे, देशकाल की हद से परे अनहद है। मौन द्वारा हम कालातीत, देशातीत, विचारातीत, भावतीत तथा संकल्पातीत सत्ता के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। इस क्षेत्र का नाम समाधि है। अच्छे सद्‌गुरु भाषणबाजी कम किया करते हैं। मौन से ही सारा काम कर देते हैं। जो शुद्ध मौन की अवस्था में जाते हैं वे त्रैलङ्ग स्वामी की तरह काष्ठमौन पाषण शिलावत् हो जाते हैं। 19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में वाराणसी में सचल शिव के रूप त्रैलंग स्वामी रहा करते थे। वे गंगा में पद्मासन लगाये कमल के पुष्प की तरह इधर से उधर घूमते रहते थे। उनकी सारी शारीरिक क्रियायें समाप्त हो गई थीं। वे पूर्णरूपेण जीवनमुक्ति की अवस्था में स्थित थे। आँख उठाकर देखना भी नहीं होता था, किसको देखते? आत्मा से भिन्न कोई और वस्तु होती तो देखें? सब कुछ ही आत्मतत्व है—फिर दृश्य द्रष्टा और दृष्टि का भेद ही समाप्त हो गया। भला आँख भी अपने आप आप को देखती है? वाराणसी भगवान विश्वनाथ की पावन नगरी है। वहां भगवान सदाशिव साकार रूप से सदा रहते हैं। त्रैलंग स्वामी जैसे सिद्ध पुरुष सदा सर्वदा सर्वकाल में वहाँ विद्यमान रहते हैं। ऐसे पुरुषों को पहचानने की आँख चाहिए आज भी वहां उसी अवस्था के सिद्धपुरुष मिल सकते हैं?

लोक व्यवहार में भी मौन, जीवन को अधःपतन से बचाकर उन्नत शिखर पर ले जाता है किसी के दोष कथन के लिए मौन हो जाना अच्छा है। अपने सत्कर्म गुणगान करने में भी मौन हो जाने से पुण्य क्षय नहीं होता। यदि कोई दान देकर उसका आख्यान कर देता है तो उसका पुण्य उसी समय समाप्त हो जाता है। मंत्र जप भी मौन होकर जपना श्रेयष्कर है। हमारे पर्वों में "मौनी अमावस्या" का माहात्म्य साधना की इसी सार्थकता को लक्षित करता है। मौन–साधना करने पर वाक् सिद्धि शीघ्र हो जाती है। जब दो लोगों में वाद विवाद हो रहा हो तो यदि एक व्यक्ति चुप हो जाये तो दूसरा अपने आप शान्त हो जायेगा। लोक में कहावत भी प्रचलित है—**'एक चुप सौ को हरा देता है'।**

गीता में भगवान ने आत्म विभूतियों का उल्लेख करते हुए मौन को परमगुह्यज्ञान और आत्मस्वरूप बताया है। मौनं चैवास्मि गुह्यानाम्' गुह्यज्ञान का अधिकारी मौनी ही होता है। जिस घड़े में छेद हो उसमें मूल्यवान वस्तु नहीं रखी जाती है। इसी प्रकार ब्रह्म विद्या का वही

अधिकारी है जो समुद्र पीकर भी ओष्ठ सूखे रखता है। सब कुछ छिपा लेता है उस की योग सम्पत्ति सुरक्षित रहती है अन्यथा अहंकार रूपी बटमार लूटकर योगी को खाली कर देते है। दिव्यज्ञान अधिकारी चपल व्यक्ति कदापि नहीं हो सकते। गुरुदेव उन्हें बाहर का संसार–धन मान–प्रतिष्ठा भले ही दे दें उसे अपनी प्यारी वस्तु योग समाधि नहीं देते। क्योंकि अपात्र के पास जाकर विद्या नष्ट हो जाती है शतपथ ब्राह्मण में एक वाक्य है जिसमें विद्या ब्रह्मज्ञानी से कहती है कि मैं तुम्हारी शरण हूँ–तुम्हारा धन हूँ, मुझे गुप्त रखकर मेरी रक्षा करना। मुझे लंपट, वाचाल और व्यभिचारी तथा मुझे न चाहने वाले को कदापि न देना। अन्यथा मैं वीर्यवती नहीं रहूँगी। वीर्यवती का अर्थ है अन्यों को प्रकाशित तथा बल युक्त, शक्तिशाली बनाने की सामर्थ्य–

विद्या हवै ब्राह्मणमाजगाम शेवधिरस्मि.....।

तंत्र शास्त्रों में बार–बार यह चेतावनी दी गई है–

गोपनीयं गोपनीयम् गोपनीयम् प्रयत्नत:।

जिस प्रकार एटमबम्ब का सिद्धान्त हर एक के हाथ लग जाये तो एक क्षण में विश्व संहार हो जायेगा। बन्दर के हाथ में दिया–सलाई पड़ जाये तो वह अपनी दुम में सबसे पहले आग लगा लेगा। इसी प्रकार इन्द्रिय संयम के न होने वाले को योगाभ्यास कराया जायेगा तो शक्ति जगते ही वह पागल अहंकारी तथा लोगों को शाप और वरदान देकर अपने जन्म मरण के चक्र को पुण्य पाप के बढ़ाने से समाप्त करने के स्थान पर बढ़ाने वाला हो जायेगा। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ऐसे साधकों को अपने पास से अलग कर देते थे जो अपनी शक्ति को सम्भाल नहीं पाते थे। प्रदर्शन तथा अपनी पूजा करवाने के चक्कर में पड़ गये। वे ऐसे साधकों के विषय में पंजाबी में कहा करते थे–भाण्डे तो मिले मगर धुंवे मिले। अर्थात् पात्र तो मिले मगर किन्तु फूटे मिले है। जिनमें से रिसकर सारा पदार्थ निकल जायेगा और फिर वे खाली के खाली हो जायेंगे जिससे सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा।

जगन्नियन्ता योगेश्वर श्रीकृष्ण ने गीता के बारहवें अध्याय में अपने प्रिय भक्त के लक्षणों का निरूपण करते हुए कहा है कि–

तुल्य निन्दा स्तुति मौनी
संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेत: स्थिरमतिर्भक्ति–
मान्मे प्रियो नर:।। 12/19

अर्थात् जो निन्दा और स्तुति में सदा एक भाव से रहता है तथा मितभाषी तथा मौनी है, जो कुछ प्राप्त हो गया उसी को प्रभु का प्रसाद समझकर उससे सन्तुष्ट है, किसी घर के प्रति मोह नहीं रखता, दृढ़ संकल्प तथा भक्ति से युक्त है, वह मनुष्य मेरा प्रिय है। भगवान ने अपने इस उपदेश को 'धर्म्यामृत' तथा धर्मानुकूल तथा अमृत के तुल्य साधना को जीवन देने वाला कहा है। जो उन के इस उपदेश का अक्षरशः? 'पर्युपासते' पालन करते हैं वे भगवान के अत्यधिक प्रिय भक्त होते हैं। ऐसे भक्तों के वश में भगवान हो जाते हैं। मौन साधना से आत्म प्रसाद मिलता है। मौन मानस तप कहा गया है। देखिये–

मनः प्रसादः सौम्यत्वं
मौनआत्मविनिग्रहः।
भाव संशुद्धिरित्येतत्
तपो मानसमुच्यते।

–गीता 17/16

अर्थात् मन को प्रसन्न रखना, सौम्यता, मौन, आत्म संयम और सद्भाव–ये सब मानसिक तप कहलाता है। गीता के 18 वे अध्याय के 52 वें श्लोक में शान्ति तथा ब्रह्मत्व की प्राप्ति के साधन के रूप में वाक्काय का मानसः, का भगवान ने उपदेश दिया है।

एक महात्मा के पास साधक पहुँचा। वह महात्मा जी से बोला–महाराज मेरे कल्याण का मुझे उपदेश दीजिए। महात्मा ने कहा, अच्छा, कल आना। साधक दूसरे दिन आया और उपदेश के लिए प्रार्थना करने लगा। महात्मा एक घण्टे शान्त बैठे रहे और अन्त में साधक से बोले–कल आना। साधक निर्दिष्ट समय पर उपस्थित होकर उपदेश की प्रार्थना करने लगा। महात्मा जी ने पूर्ववत् क्रम एक महीने तक दुहराया। अन्त में साधक के धैर्य का प्याला छलक उठा और बोला–भगवान आप रोजाना बुलाते हैं पर उपदेश नहीं देते। महात्मा जी बोले मैंने तत्व का उपदेश तो कर दिया। मुझे दुःख है तू समझा नहीं। शान्त होकर मौन होकर मौन अवस्था में पहुँच कर मौन हो जा, पूर्ण हो जायेगा। यही उपदेश में क्रियात्मक रूप से तुझे देता रहा हूँ।

भोजन के बाद वज्रासन लाभकारी है

–दिनेशचन्द्र शर्मा

सामान्यत: योगासन खाली पेट किये जाते हैं परन्तु वज्रासन एक ऐसा आसन है जिसे भोजन के तत्काल बाद करना बहुत प्रभावशाली और लाभकारी है। आज की भागदौड़ भरी जिन्दगी में लोगों के पास भोजन के बाद विश्राम का समय नहीं मिलता। जिनके पास थोड़ा सा भी समय है, वे वज्रासन को अपनाकर अपनी पाचन क्षमता को ठीक रख सकते हैं, साथ ही अनेक अन्य शारीरिक कष्टों से भी मुक्ति पा सकते हैं।

ऋषियों की देन योग आसनों को अपनाकर जीवन को स्वस्थ और निरोग बनाए रखा जा सकता है। दवाओं में धन व्यय कम होता है। योग आसन तो अपने घर पर उपलब्ध निःशुल्क साधन है। योगासनों को नियमित रूप से दिनचर्या में शामिल करना चाहिए।

वज्रासन करने से पाचन क्षमता सुदृढ़ बनती है। मन्द जठराग्नि तेज हो जाती है। जिन्हें भूख कम लगती है या जिनका भोजन ठीक से नहीं पचता, उनके लिए वज्रासन बहुत लाभकारी है। जब वज्रासन की स्थिति में बैठते हैं, तब रक्त का संचार पैरों की तरफ कम हो जाता है और उदर के अंगों की ओर अधिक मात्रा में संचारित होता है। जिसके फलस्वरूप रक्त अधिक मिलने से उन अंगों की कार्यविधि सुचारु रूप से चलने लगती है। पाचक रसों का स्राव अधिक होता है। उदर की गैस भी सहजता से बाहर निकलती है।

वज्रासन के अनेक लाभ हैं। यह पाचन क्रिया को सुचारु बनाता है। पाचक रसों का स्राव बढ़ाता है। पेट के सभी अंग–अवयवों को स्वस्थ बनाता है। पेट की वायु को ऊपर चढ़ने से रोककर उसे मलद्वार से बाहर निकालने में सहायक है। वज्रासन से घुटनों के जोड़ों में हलका सा स्वस्थप्रद खिंचाव होता है। जांघ और पिंडलियाँ मजबूत होती हैं। साइटिका व ऐडियों में वात रोग नाशक है। स्मृति को बढ़ाता है। महिलाओं में मासिक धर्म सम्बन्धी रोगों और उस समय के कष्टों से मुक्ति दिलाता है।

वज्रासन करने के लिए पहले दोनों पैरों को सामने की ओर सीधा करके बैठ जाएं। फिर दाहिने पैर को मोड़कर दाहिनी जंघा के पास लायें। उसी प्रकार बाएं पैर को मोड़कर बाई

जंघा के पास लायें। पंजों की स्थिति ऐसी रहे कि तलवे दिखाई दें। दोनों घुटने परस्पर सटे रहें और पैर के तलवे अलग–अलग रहें। दोनों हथेलियों को घुटने पर रखकर कमर सीधी करके बैठ जायें। दृष्टि सामने की ओर रहे या नेत्र बन्द भी कर सकते हैं। श्वास की गति सामान्य रहनी चाहिए।

पुनः पहली जैसी स्थिति में आने के लिए दाहिनी ओर थोड़ा झुकते हुए पहले बाएं पैर को बाहर निकालें फिर बाईं ओर थोड़ा झुकते हुए दाहिना पैर बाहर निकालते हुए सामान्य स्थिति में आ जाएँ।

वज्रासन का अभ्यास प्रारम्भ में पांच मिनट करें। धीरे–धीरे अभ्यास बढ़ाकर 15 से 20 मिनट नित्य करना चाहिए। उसका अभ्यास आधा घंटा से एक घंटा तक किया जा सकता है।

योग–आसनों के साथ भोजन पर भी ध्यान देना जरूरी है। आहार जीवन की नैसर्गिक आवश्यकता है। आहार का प्रभाव हमारे शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्थिति पर पड़ता है। आयुर्वेद में महर्षि चरक की कथा बहुत प्रचलित है जिसमें आहार के बारे में तीन बातें बताई हैं–"हित भुक मित भुक, ऋत भुक। हित भोगी वह है जो स्वास्थ्य के अनुकूल और उपयोगी पदार्थ ही ग्रहण करता है। मित भोजी का मतलब है कि जितना आवश्यक है उतना खाओ। ऋत आहार का सम्बन्ध पवित्रता और चेतना की निर्मलता है। ऋत का अर्थ भोजन में समायी भावनाओं में निहित है जैसे भोजन बनाने वाले की भावनाएँ क्या हैं आदि। मां के बनाये भोजन में ममता है। ढाबे के भोजन में वह बात नहीं।

उपयुक्त भोजन उचित रीति से लेना आरोग्य का रहस्य है। हमारे घरों में भी भोजन को पहले भगवान, ईष्ट देव, गुरुदेव को भोग लगाने के बाद खाने की परम्परा है।

स्थिर चित्त होकर शान्त मन से भगवान के प्रसाद के रूप में भोजन को खाना चाहिए।

भोजन के उपरान्त वज्रासन करें और निरोग रहें। योग योगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज की अनुपम देन जीवन तत्व साधन में सभी योग आसनों का समावेश है। गुरुदेव योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज योग प्रचार कार्यक्रमों में जीवन तत्व साधन की क्रियाओं का अभ्यास कराते थे। इन क्रियाओं को नियमित रूप से करने से जठराग्नि प्रबल रहती है। इन क्रियाओं को नियमित करने से मनुष्य जीवन पर्यन्त स्वस्थ रह सकता है।

स्वास्थ्य–चर्चा–

योगी के लिए जरूरी है सात्विक आहार

सतोगुण प्रधान मनुष्यों का आहार–

आयु वृद्धि करने वाले, सत्व वृद्धि करने वाले, बल को बढ़ाने वाले आरोग्यता देने वाले, सुख और प्रेम को बढ़ाने वाले रसीले, चिकने, जिनकी शक्ति कायम रहने वाली है, जो ह्रदय की पुष्टि करने वाले हैं अर्थात् जो स्वभाव से ही रुचिकर हैं ऐसे आहार सात्विक कहलाते हैं। और वह सतोगुण प्रधान व्यक्तियों को ही अच्छे लगते हैं। गोघृत, दूध, मक्खन मलाई आदि पेय पदार्थ, गेहूँ, चना, जौ या रसीले सेब, सन्तरा, अंजीर और मौसमी आदि फल, घीया, बथुआ, तोरई, चौलाई, पालक, मैथी आदि पत्ती के साग और पवित्र कन्दमूलों का आहार ये सब सात्विक आहार हैं। इनके सेवन करने से मन में सतोगुण का ही विकास होगा। बुद्धि पवित्र रहेगी और सतोगुण प्रधान को स्वभावतः यही गुण प्यारे भी लगेंगे।

रजोगुण प्रधान मनुष्यों का आहार–

कड़वे–कषैले आदि, खट्टे–आम की खटाई आदि, ज्यादा नमक वाले, अत्यन्त गरम, जिनमें बहुत अधिक मिर्च पड़ी हो और रूखे व खुश्क तेज मिर्चों के पकौड़े आदि और इसी प्रकार के जो शरीर में दर्द देने वाले, गर्मी पैदा करने वाले दुःख और चिन्ता को पैदा करने वाले भोजन, रजोगुण को बढ़ाने वाले होते हैं जो रजोगुण प्रधान व्यक्ति हैं उन्हें सब भोजन प्रिय होते हैं।

तमोगुण प्रधान मनुष्यों का आहार–

रस रहित, दुर्गन्ध युक्त, बासी, अच्छिष्ट एवं रस रहित भोजन तमोगुण को बढ़ाने वाला है और तामसी व्यक्ति को ही प्रिय होता है। जैसे पहले दिन के बने हुये जिन पर से रात उतर चुकी है और गतरस हो जाते हैं, ऐसे भोजन तम प्रधान होते हैं।

जितने जिस–जिस स्वभाव के व्यक्ति संसार में रहते हैं उनको उसी प्रकार का खान–पान, रहन–सहन प्रिय हुआ करता है। योगी के लिए सात्विक बन जाना बहुत आवश्यक है। जब तक उसके अन्दर सतोगुण की वृद्धि नहीं होती तब तक वह परम लक्ष्य को पाने में असमर्थ रहेगा। इसके साथ–साथ एक बात का और ख्याल रखना आवश्यक है कि मन की शक्ति सब आहारों में परिवर्तन कर देती है। दूध घी फल कन्दमूल सासग सब्जी ये सब भोजन सात्विक हैं। किन्तु कोई पाप कमाई करने वाला ऐसे आहार खिलाता है, तो उनमें उनके मन का असर रहा करता है। सुनते हैं ननकाना साहब में एक बार गुरू नानक देव के सामने एक नवाब की ओर से घृत पक्व सुमधुर भोजन आया। दो सूखी रोटी एक किसान भी लेकर आया। गुरूनानक देव ने वह रोटियाँ स्वीकार कर लीं किन्तु नवाब का भोजन स्वीकार नहीं किया। लोगों ने उनसे हठपूर्वक पूछा कि क्या कारण है कि इतने पवित्र घी दूध के भोजन को आपने त्याग दिया और सूखे जौ की रोटियों को स्वीकार कर लिया। गुरुदेव ने जवाब दिया कि इन रोटियों में दूध है और इस घृत पक्व भोजन में खून है, तमोगुण है। इसलिए ऐसे तमोगुण प्रधान भोजन मुझे रुचिकर नहीं थे। यह कहकर उन्होंने पूड़ी उठाकर निचोड़ी और सूखी रोटी उठाकर निचोड़ी। रोटियों से दूध व पूड़ियों से खून गिरने लगा। लोगों ने इस चमत्कार को देखकर बड़ा आश्चर्य माना। इसलिए मनुष्य को चाहिए भोजन सात्विक करें। वह नेक कमाई का हो तो सोने पर सुहागा होगा। इसके अतिरिक्त भगवान ने गीता में आज्ञा दी है–

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नाबोधस्य योगो भवित दु:खहा।।

अर्थात् जिनका आहार विहार युक्त है। जिनका सोना व उठना युक्त है और जिसकी हर चेष्टा नियमित होती है उनके लिए योग दुःखों का नाश करने वाला है। इसलिए सात्विकी आहार के साथ–साथ युक्ताहार विहार के नियम का पालन करना भी बहुत आवश्यक है। मनुष्य को भोजन खूब चबाकर करना चाहिए। दूध को थोड़ा–थोड़ा करके पीना चाहिए, इससे साधकों को यह अनुभव होता रहे कि चबाया हुआ पदार्थ पेट में पहुँचते ही हजम हो चुका है। आधा पेट भोजन करे, आधा जल से और चतुर्थ भाग वायु के लिए खाली रहने दे। इस प्रकार का आहार हर व्यक्ति के लिए पूर्ण लाभप्रद

है। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि एक नौजवान शीर्षासन आदि करता है और वह अपने आहार को इतना संयमित कर दे कि सहन शक्ति के बाहर हो, उसका परिणाम भी अत्यधिक खराब निकलता है। ऐसे व्यक्ति को भूखा नहीं रहना चाहिए न ही उपवास करना चाहिए। उपरोक्त नियम उन परमार्थ जिज्ञासुओं के लिए हैं जो हर समय स्वाध्यायशील हैं और समाहित चित्त हैं। नैत्यिक व्यायाम करने वाले नौजवानों के लिए उपयुक्त आहार लेना व भूख को न मारना आवश्यक है।

निद्रादौ जागरस्यान्ते भावं उपपद्यते सदा।
तं भावं भावयेद् योगी निश्चितं मुक्तं एव सः।।

संसार को प्राप्त जीव अर्थात् सांसारिक लोग स्वप्न और जागरण वाले हैं अर्थात् वे सोते भी हैं और जागते भी हैं। किन्तु तत्वसम्पन्न योगीजन न जागते हैं और न सोते ही हैं। वे स्वप्न–जागरण विहिन हैं। स्वप्न में चिदंश नहीं रहता और जागरण में विषयों का ग्रहण होता है। इसलिए विद्वान पुरुष स्वप्न और जागरण से अतीत को तत्व कहते हैं। तत्व के जानकार विद्वान तत्व को भाव और अभाव दोनों से अतीत, स्वप्न और जागरण से परे एवं मरण और जीवन से रहित जानते हैं। निद्रा के आदि में और जागरण के अन्त में जो भाव होता है, उस भाव को जो योगी भावना करे, वह निश्चय रूप से मुक्त ही है।

(अमनस्कयोग)

श्री महाप्रभु जी के चरणों में समर्पित

ऐ योगी सिद्धगुफा के तेरी महिमा अपरम्पार
तू जग का पालन हार गुरुजी आ जाओ इकबार।
सब नाते-रिस्ते तुमसे हैं, बस तुम हो जग में दाता
तुझको छोड़ कहाँ जाऊँ मैं, तुम हो भाग्य विधाता
चरण कमल में मस्तक टीके दर्शन दो सरकार
तू जग का पालन हार।

कृपा करके ऐ त्रिपुरारी, सुधा प्यार का बाँटो,
योग की वर्षा करने वाले, बंधन भव का काटो;
अमृत की गंगा छूने को है भगीरथ तैयार
तू जग का पालन हार।

सिद्धगुफा के मन्दिर की वो, दिव्य ज्योति जलाओ
मन कमल मेरा ये खाली है आ आसन आप लगाओ;
पलक ओट से मोती बोले, जाऊँ चरणों पे बलिहार
तू जग का पालन हार।

कबसे द्वार खड़ा राजेश, योग की भिक्षा लेने को
भर दो झोली अवढर दानी, सत्संग की शिक्षा देने को
शरण में अपनी ले लो मुझको, मेरी अरज करो स्वीकार
तू जग का पालन हार।
गुरुजी आ जाओ इकबार।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/18-20 JANUARY 2021

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

कामधेनु की स्तुति

त्वं माता सर्वदेवानां त्वं च यज्ञस्य कारणम्। त्वं तीर्थं सर्वतीर्थानां नमस्तेऽस्तु सदानघे।
शशिसूर्यारुणा यस्या ललाटे वृषभध्वजः। सरस्वती च हुंकारे सर्वे नागाश्च कम्बले।
क्षुरपृष्ठे च गन्धर्वा वेदाश्चत्वार एव च। मुखाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च।

(स्कन्द., ब्रह्म., धर्मारण्य. 10/18-20)

'हे निष्पापे ! तुम सब देवताओं की माता, यज्ञ की कारण रूपा और सम्पूर्ण तीर्थों की रूपा हो। हम तुम्हें सदा नमस्कार करते हैं। तुम्हारे ललाट में चन्द्रमा, सूर्य, अरुण और वृषभध्वज शंकर हैं, हुंकार में सरस्वती, गलकम्बल में नागगण, खुरों में गन्धर्व और चारों वेद तथा मुखाग्र में चर एवं अचर सम्पूर्ण तीर्थ विराजमान हैं।'

संस्थापक :— योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग प्रेस, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) रासलाल शर्मा